पंकज बिष्ट की कहानियों का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन

(एम. फिल. की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध)

शोध–निर्देशक

प्रो. एस. पी. सुधेश

शोधकर्ता

संजय कुमार

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली - 110 067

1998

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI - 110 067

दिनांक 21-7-98

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री संजय कुमार द्वारा प्रस्तुत "पंकज बिष्ट की कहानियों का सामाजिक सांस्कृतिक अध्ययन" शीर्षक लघु शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा किसी अन्य विश्व-विद्यालय में इसके पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है । यह सर्वथा मौलिक कृति है ।

(प्रो. एस. पी. सुधेश)
शोध-निर्देशक 21.7.98
भारतीय भाषा केन्द्र

(प्रो. मैनेजर पाण्डेय)
अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र

GRAM : JAYENU TEL. : 6107676, 6167557 TELEX : 031-73167 JNU IN FAX : 91-011-6865886

माता-पिता को समर्पित

विषय-सूची

	पृष्ठ संख्या
पुरोवाक्	क - ग
पहला अध्याय सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन का अर्थ	1 - 11
दूसरा अध्याय पंकज बिष्ट का रचना संसार	12 - 37
तीसरा अध्याय पंकज बिष्ट की कहानियों का सामाजिक अध्ययन	38 - 68
चौथा अध्याय पंकज बिष्ट की कहानियों का सांस्कृतिक अध्ययन	69 - 84
पांचवां अध्याय पंकज बिष्ट की कहानियों का शिल्प	85 - 104
सारांश	105 - 108
संदर्भ सूची	109 - 111

पुरोवाक्

पहली बार पंकज बिष्ट का उपन्यास 'उस चिड़िया का नाम' पढ़ना मेरे लिए एक नया अनुभव था । यथार्थ के जिस रूप से मैं परिचित था और जिसका मैं प्रामाणिक सहभागी भी था, इस उपन्यास को पढ़ने के पश्चात्, उसका एक नया ही रूप मेरे सामने उद्‌घाटित हो उठा। जीवन-प्रसंग और विविध घटनाएं, जो पहले सामान्य प्रतीत होते थे,अब कुछ नए ही अर्थों को व्यंजित करने लगे । फिर तो मैंने पंकज बिष्ट के समस्त साहित्य को पढ़ डाला । उनकी प्रत्येक रचना से गुजरना, चाहे वह उपन्यास हो या कहानी, मेरे लिए अपनी ही अतीत यात्रा के समान था, जिसके दौरान मेरे विगत जीवन के अनुभव कुछ नए अर्थ ग्रहण करने लगे । अत: पंकज बिष्ट की रचनाओं का अध्ययन, मेरे लिए सदा अपने विगत जीवन और वर्तमान परिवेश को समग्रता में समझने के प्रयास का ही एक हिस्सा रहा है ।

पंकज के दोनों उपन्यासों की विशद चर्चा हुई है । साथ ही उन के उपन्यासों का विधिवत अध्ययन भी हुआ है । उनकी कहानियों की चर्चा तो हुई है, लेकिन अभी भी उनकी कहानियों पर केन्द्रित कोई विशिष्ट अध्ययन उपलब्ध नहीं है । इस स्थिति में मेरे लिए यह स्वाभाविक ही था कि मैं पंकज की कहानियों को अपने एम. फिल. शोध-प्रबन्ध के लिए आधार बनाऊं ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को अध्ययन की सुविधा के लिए पांच भागों में विभाजित किया गया है । प्रथम अध्याय में सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन के अर्थ पर चर्चा की गई है । साथ ही समाजशास्त्रीय अध्ययन और सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन की तुलना भी की गई है ।

दूसरे अध्याय में पंकज बिष्ट के रचना संसार से परिचित कराया गया है । इस अध्याय में उनके दोनों उपन्यासों और कहानियों की संक्षिप्त रूपरेखा भी दे दी गई है ।

तृतीय अध्याय `कहानियों के सामाजिक अध्ययन` पर केन्द्रित है । मुख्य बल पहाड़ी पृष्ठभूमि की कहानियों पर दिया गया है । पहाड़ी समाज की मुख्य सामाजिक समस्याओं की चर्चा के साथ साथ कहानियों में उनके चित्रण का विशद विवेचन किया गया है ।

चौथा अध्याय है -`कहानियों का सांस्कृतिक अध्ययन` । पहाड़ी समाज की विविध सांस्कृतिक गतिविधियों की विवेचना की गई है । लेखक द्वारा उठाए गए सांस्कृतिक सवालों का मुख्य रूप से अध्ययन किया गया है । महानगरीय पृष्ठभूमि की कहानियों में अभिव्यक्त सांस्कृतिक चेतना को भी प्रमुखता दी गई है ।

पांचवां अध्याय, पंकज बिष्ट की कहानियों के शिल्प पक्ष का विवेचन करता है । उनके द्वारा प्रयुक्त विभिन्न शिल्प प्रविधियों की चर्चा की गई है । कहानियों में प्रयुक्त विविध भाषा रूपों का भी अध्ययन इसी अध्याय में किया गया है । अंत में पूरे शोध प्रबन्ध का सारांश प्रस्तुत किया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मैंने डा. एस. पी. सुधेश के सानिध्य में पूर्ण किया । इस शोध-प्रबन्ध के रूपाकार लेने में उनका मनोयोग और स्नेहपूर्ण निर्देशन प्राथमिक है । उनके प्रति आभार व्यक्त करना महज औपचारिकता होगी । उन्हें हार्दिक श्रद्धा और आदर प्रस्तुत करता हूं ।

मैं अपने विभाग के प्रो. मैनेजर पाण्डेय, प्रो. केदारनाथ सिंह, डा. पुरुषोत्तम अग्रवाल, डा. वीरभारत तलवार, डा. गोविन्द प्रसाद तथा डा. द्वारिकाप्रसाद वर्मा का भी आभार व्यक्त करना चाहूंगा, जिन्होंने मेरी अकादमिक कठिनाइयों का सहर्ष समाधान किया ।

जितेन्द्र, प्रेम, जयप्रकाश, भरत, वैभव, पंकज चौधरी, जयकिशन प्रकाश, अभय, अरुण, शिवानी, पूनम तथा मीनेश आदि सहपाठियों के साथ विचारोत्तेजक बहसों ने भी इस शोध प्रबन्ध को वर्तमान रूप देने में सहायता की ।

अश्विनी, नवनीत, रतन और रामभूरत भाई का सानिध्य स्वम् उत्साह लगातार बना रहा । ये सभी मित्र किसी भी प्रकार की सहायता के लिए हमेशा तत्पर रहे ।

'छोटे' पंकज ने पुरानी पत्रिकाओं के ढेर से आवश्यक सामग्री संकलित करने का उत्तरदायित्व वहन किया । उसके बिना यह शोध-प्रबन्ध अधूरा ही रहता ।

साथ ही नैनीताल तथा अन्य स्थानों के उन सभी मित्रों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं, जिन्होंने अजाने ही साहित्य से रिश्ता जोड़ दिया ।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय लाइब्रेरी स्टाफ, साहित्य अकादमी लाइब्रेरी स्टाफ और टंकक श्री बी. पी. भाटिया का योगदान भी भुलाया नहीं जा सकता ।

12-7-1998

संजय कुमार

प्रथम अध्याय

सामाजिक - सांस्कृतिक अध्ययन का अर्थ

सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन का अर्थ

समकालीन कथाकारों में पंकज बिष्ट एक सुप्रसिद्ध हस्ताक्षर हैं । यद्यपि उनकी चर्चा एक उपन्यासकार के रूप में अधिक हुई है, परन्तु समकालीन कहानी का परिदृश्य भी उनकी चर्चा के बिना अपूर्ण ही रहेगा । उनकी कहानियां रूप और कथ्य दोनों स्तरों पर अपनी विविधता और कल्पनाशीलता के लिए बहुचर्चित रही हैं । उनकी कहानियां जहां एक प्रतिबद्ध लेखक की, मानवीय संघर्ष, पीड़ा और जिजीविषा की दस्तावेज तो हैं ही, वहीं अभिव्यक्ति के नये रूपों की सतत् तलाश का भी प्रमाण हैं । इसी अर्थ में उनका लेखन समकालीन लेखन में विशिष्ट स्थान रखता है ।

पंकज बिष्ट की कहानियां सामाजिक सरोकारों और सांस्कृतिक सवालों से गहरे अनुप्राणित हैं । उनकी कहानियां जहां एक ओर समकालीन यथार्थ को, उसकी समग्र जटिलता के साथ सामने लाती हैं, वहीं सामाजिक-सांस्कृतिक सवालों पर लेखकीय टिप्पणी उनकी जन पक्षधरता को सामने लाती है । इसलिए उनकी कहानियों का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन, उनकी कहानियों की सही समझ के लिए एक मापदण्ड बन सकता है ।

आशय

सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन से हमारा अभिप्राय है - उनकी कहानियों में सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना की तलाश और यह चेतना किन रूपों में कहानियों में व्यक्त हो रही है । वस्तुत: प्रत्येक लेखक जिस सामाजिक परिवेश के मध्य रहता है, उसका ही प्रतिफलन अपनी रचना में करता है । जिन सांस्कृतिक प्रश्नों से लेखक की मुठभेड़ होती है, उन सांस्कृतिक सवालों को वह अपनी रचना में भी उठाता है । इसलिए प्रत्येक रचना किसी न किसी रूप में अपने समाज से गहरे जुड़ी होती है ।

चूंकि रचना सीधे-सीधे, सामाजिक यथार्थ का उल्था नहीं होती, वरन् वह यथार्थ की कलात्मक अभिव्यक्ति होती है । अत: उसमें सामाजिक सांस्कृतिक प्रश्नों को रचना के अपने व्याकरण और कला की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उठाया जाता है । यह सम्भव है कि ऊपरी तौर पर कहानी किसी सामाजिक अथवा सांस्कृतिक सवाल को उठाती प्रतीत न हो, लेकिन अपने गहरे अर्थों में वह किसी ज्वलंत समस्या से जुड़ी हो । यह समस्या विशेषकर उन कहानियों में अधिक है जो `प्रतीकात्मक` शैली अथवा `फैंटेसी` शिल्प में लिखी गयी हैं ।

अत: किसी रचना विशेष के सामाजिक सांस्कृतिक अध्ययन में हम रचना में अन्तर्निहित सामाजिक और सांस्कृतिक यथार्थ की पड़ताल करते हैं । हम यह देखते हैं कि लेखक किन सामाजिक प्रश्नों को अपनी रचना का विषय बना रहा है और उन प्रश्नों के प्रति लेखक का रुख कैसा है । चूंकि लेखक किसी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध हो सकता है, फलत: हम यह देखने का प्रयास भी करते हैं कि लेखक अपनी विचारधारा के आलोक में, सामाजिक यथार्थ को किस कोण से अभिव्यक्त कर रहा है । उसकी दृष्टि तटस्थ है अथवा आलोचनात्मक तथा उसे किस पक्ष के प्रति सहानुभूति है, यह लेखक के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है । इस आलोक में रचना का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन करके रचना के मर्म तक पहुंचा जा सकता है और यही इस अध्ययन की सार्थकता भी होगी ।

आधुनिक युग में साहित्य की एक नई धारणा सामने आई है । यह है साहित्य की समाजशास्त्रीय आलोचना । यद्यपि इसे पूर्णत: आधुनिक कहना अतियुक्ति होगी । संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य और साहित्य के स्वरूप पर महत्वपूर्ण चिन्तन हुआ है । व्यापक अर्थ में काव्य की धारणा के अनेक पक्षों का विवेचन भी हुआ है । उस सब का महत्व स्वीकार करने के उपरान्त भी जब आधुनिक युग में नये साहित्य का विकास हुआ तो साहित्य की नई धारणा पर विचार की आवश्यकता भी महसूस हुई । नए

सामाजिक सन्दर्भ से नया साहित्य पैदा हुआ तो साहित्य को समझने की नई दृष्टि पैदा हुई । इसी कारण बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप' में लिखा कि 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है ।' यह निश्चय ही एक नए दृष्टिकोण की शुरुआत थी । यह धारणा जहां प्राचीन साहित्य-मानदण्डों पर प्रश्न चिह्न लाती है तो वहीं अपने युग के साहित्य मूल्यों को अभिव्यक्त भी करती है । जब द्विवेदी युग में सामाजिक सुधार और ज्ञान-विज्ञान का प्रसार साहित्य का मुख्य ध्येय बना तो साहित्य सम्बन्धी एक नया दृष्टिकोण विकसित हुआ । तब साहित्य को 'ज्ञानराशि का संचित कोश' कहा गया । लेकिन बदलते युग और साहित्य के साथ यह परिभाषा भी अपर्याप्त सिद्ध होने लगी तो रामचन्द्र शुक्ल ने अपने युग के लिए साहित्य की नई परिभाषा दी । उन्होंने साहित्य को 'जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब' कहा । इससे स्पष्ट है कि साहित्य के विकास के साथ ही साहित्य के मूल्यांकन की दृष्टि भी बदलती जाती है । इसी बदलती दृष्टि का परिणाम है कि आज के युग में साहित्य की समाजशास्त्रीय आलोचना पद्धति,साहित्य-आलोचना की सर्वाधिक महत्वपूर्ण आलोचना पद्धति सिद्ध हुई है ।

साहित्य आलोचना की यह पद्धति रूपवादियों से बिलकुल भिन्न है । रूपवादियों ने साहित्य की तरह तरह की धारणाएं निर्मित की हैं और वे उन धारणाओं के अनुसार साहित्य की व्याख्या भी करते हैं । मनोवैज्ञानिक आलोचना की भी साहित्य की अपनी धारणा है ।रूपवादी और मनोवैज्ञानिक धारणाओं के आधार पर न तो साहित्य का इतिहास लिखा जा सकता है और न साहित्य का समाजशास्त्र बन सकता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सामने काव्य और साहित्य सम्बन्धी संस्कृत काव्यशास्त्र की धारणाएं मौजूद थीं, फिर भी उन्होंने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिखने के लिए साहित्य की नई धारणा बनाई क्योंकि उन को ऐसी धारणा की जरूरत थी जिससे साहित्य का ऐतिहासिक स्वरूप प्रकट हो सके । इस अलंकार, रीति, वक्रोक्ति के आधार पर साहित्य का

इतिहास लिखना सम्भव न था । यही कारण है कि साहित्य के समाज-शास्त्र ने साहित्य की ऐसी धारणा विकसित की है जिससे साहित्य का सामाजिक स्वरूप स्पष्ट हो और समाज से साहित्य के सम्बन्ध की व्याख्या संभव हो ।"[1]

साहित्य के समाजशास्त्रीय अनुशीलन की भी कई धाराएं हैं । यह विकास साहित्यालोचन में विभिन्न दृष्टियों के विकास का परिणाम है । आजकल साहित्य के समाजशास्त्र के क्षेत्र में तीन दृष्टियां सक्रिय हैं, जिन का लक्ष्य है --

(1) साहित्य में समाज की खोज

(2) समाज में साहित्य की स्थिति

(3) साहित्य और पाठक का सम्बन्ध ।

वस्तुत: साहित्य का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन उपर्युक्त तीन पद्धतियों में प्रथम को व्यक्त करता है । साहित्य के सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन में, आलोचक साहित्य में समाज की खोज करता है तथा उसकी प्रामाणिकता तथा सत्य का विवेचन करता है । इस प्रकार जहां साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन का क्षेत्र वृहद है, वहीं सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन इसके एक पक्ष को लेकर आगे बढ़ता है ।

इस अध्ययन में साहित्य में समाज की महज खोज ही नहीं की जाती, वरन् उसकी व्याख्या भी की जाती है । "ऊपरी तौर पर समाज से साहित्य का सम्बन्ध जितना सहज और सरल दिखाई पड़ता है, उतना वह होता नहीं है । गहरे स्तर पर छानबीन करने के दौरान, उसकी जटिलता सामने आती है । वस्तुत: साहित्य के सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत समाज

---

1. मैनेजर पाण्डेय - साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृ० 9

से साहित्य के सम्बन्ध का विवेचन करने वाले दो तरह के हैं । एक वे हैं जो समाज को समझने के लिए साहित्य का उपयोग करते हैं और दूसरे साहित्य को समझने के लिए समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण अपनाते हैं ।[1] शुद्ध समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण वालों के लिए अच्छी-बुरी, सतही और गंभीर साहित्यिक कृतियों में कोई फर्क नहीं होता । वे महान साहित्य और लोकप्रिय साहित्य को समान महत्व देते हैं । इसका एक अच्छा पक्ष यह है कि इसके अन्तर्गत आलोचकों द्वारा उपेक्षित लेकिन साधारण जनता में लोकप्रिय साहित्य का सामाजिक अध्ययन संभव हो पाया है ।

'साहित्य की साहित्यिकता की रक्षा करते हुए उसकी सामाजिकता खोजने वाले साहित्य के ज्ञानात्मक पक्ष का विवेचन करते हैं । वे साहित्यिक कृतियों के विशिष्ट स्वरूप की उपेक्षा नहीं करते, इसलिए रचना की अन्तर्वस्तु उसकी संरचना और प्रयोजन पर ध्यान देते हैं । इस प्रकार का अध्येता यह देखने की कोशिश करता है कि सर्जनात्मक साहित्य के निर्माण में समाज की क्या भूमिका होती है और रचना की जड़ें समाज में कितनी समाई होती हैं, किसी रचना में युग की प्रभावशाली विचारधारा का रचना की अन्तर्वस्तु और रूप पर क्या प्रभाव पड़ता है और यह भी कि कोई रचना किस तरह तथा किस सीमा तक अपने समाज को प्रभावित करती है । साहित्यिक रचना एक सामाजिक कर्म है और कृति एक सामाजिक उत्पादन, लेकिन साहित्य की रचना व्यक्ति करता है, इसलिए समाज से साहित्य के सम्बन्ध को समझने के लिए समाज से रचनाकार व्यक्ति के ठोस ऐतिहासिक सम्बन्ध की समझ आवश्यक है ।'[2]

प्रारम्भिक साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन साहित्य से समाज को दो स्तरों पर जोड़ता है । एक तो समाज को साहित्य की उत्पत्ति

---

1. मैनेजर पाण्डेय - साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृ० 12
2. वही, पृ० 13

और उसके स्वरूप का निर्धारण करने वाली शक्ति के रूप में और दूसरे साहित्य को समाज के दर्पण के रूप में । यह चिन्तन विधेयवाद से प्रभावित था । उसमें समाज और साहित्य के बीच कार्य-कारण सम्बन्ध मान लिया जाता था । उस दृष्टिकोण की प्रमुख मान्यता यह थी कि साहित्य समाज का दर्पण है जिसमें समाज प्रतिबिंबित होता है । उस समय के विचारक साहित्य से समाज के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिए साहित्य की अन्तर्वस्तु के विश्लेषण को पर्याप्त मानते थे । हिन्दी में महावीरप्रसाद द्विवेदी के युग में दर्पणवादी दृष्टिकोण खूब प्रचलित था। उस युग के लेखकों ने बार-बार साहित्य को समाज का दर्पण कहा है । लेकिन इस दृष्टिकोण की एक सीमा यह भी है कि यह रचनाकार की क्रियाशीलता की उपेक्षा करता है । लेखक सामाजिक यथार्थ की रचना में यथार्थ का मात्र प्रतिबिंबन ही नहीं करता, वह उसकी पुनर्रचना भी करता है । रचना में उसकी कल्पनाएं और आकांक्षाएं भी व्यक्त होती हैं । कुछ विचारकों का तो मानना है कि समाज केवल अन्तर्वस्तु में ही निहित नहीं होता, वरन् वह तो रूप तथा शिल्प में भी विद्यमान रहता है । अभिव्यक्ति केवल प्रस्तुतीकरण में ही नहीं होती, वरन् प्रतीकात्मक भी होती है । दर्पणवादी दृष्टिकोण में न तो शिल्प सम्बन्धी इन विशेषताओं की विवेचना होती है, न इन विशेषताओं के निहित सामाजिक, यथार्थ की व्याख्या ।[1]

साहित्य में समाज की खोज की प्रक्रिया एक जटिल कार्य है जो अध्येता के सामने कई चुनौतियां रखती है । इन चुनौतियों के समाधान की प्रक्रिया में ही समाज के सामाजिक अध्ययन की कई नई धारणाओं और पद्धतियों का विकास हुआ ।

---

1. मैनेजर पाण्डेय - साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृ० 13

अब अधिकांश विचारक स्वीकार करते हैं कि रचना के हर स्तर पर अर्थात् उसकी अन्तर्वस्तु , रूप, शिल्प, संरचना, भाषा में सामाजिक यथार्थ निहित होता है । इसीलिए अब रचना की उस विशेषता को पहचानने पर जोर दिया जाता है जो उसकी सम्पूर्णता में समाज की खोज में मदद करे । इसी को कुछ विचारकों ने `अर्थ के मर्म ` का विवेचन कहा है तो लूसिएं गोल्डमान ने इसे रचना की `विश्व दृष्टि` के रूप में अभिहित किया है । वस्तुत: रचना में सामाजिक यथार्थ को सतही तौर पर पहचानना कठिन ही नहीं, कभी कभी गलत भी सिद्ध होता है । इसलिए हमें सामाजिक यथार्थ के उद्घाटन के लिए रचना की `अन्तर्वस्तु के सत्य` का उद्घाटन करना होगा ।

रचना में लेखक की विचारधारा और विश्व दृष्टि भी निहित रहती है । फलत: रचना का सामाजिक यथार्थ, उस लेखक की विचार-धारा के आलोक में ही उद्घाटित हो पाता है । अत: रचना के मूल्यांकन के लिए, उसकी विचारधारा को ध्यान में रखना अति आवश्यक है । वस्तुत: लेखकीय विचारधारा की पड़ताल के लिए रेमंड विलियम ने रचना में `अनुभूति की संरचनाओं ` की पहचान पर ज़ोर दिया है ।

वस्तुत: हमें साहित्य में सामाजिक यथार्थ की तलाश करते हुए सरली-करण से बचना होगा । साहित्यिक कृति की अपनी स्वायत्तता को समझते हुए ही उसमें निहित सामाजिक यथार्थ को पहचानना ही एक वास्तविक सामाजिक अध्ययन कहला सकता है ।

सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन, समाजशास्त्रीय अध्ययन से मिलता-जुलता होने के उपरान्त भी भिन्न है । जहां समाजशास्त्रीय अध्ययन में रचना के बाहर का भी अध्ययन किया जाता है, जैसे कि रचना की बिक्री, प्रचार, पाठक पर प्रभाव, लेखक की विचारधारा आदि, वहीं सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन मूलत: रचना तक सीमित है । यह रचना में उठाए गए सामाजिक-

सांस्कृतिक यथार्थ के अध्ययन तक ही सीमित है । वस्तुत: सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन द्वारा रचना विशेष में उठाए गए सामाजिक-सांस्कृतिक प्रश्नों को प्रमुखता देकर सतह पर उठा दिया जाता है, जिससे पाठक के सामने भी वे सवाल प्रमुखता से उभर आते हैं । चूंकि कोई भी रचना एक कलात्मक उपकरण है, जिस कारण पाठक रचना का अनुशीलन करने पर एक कलात्मक सौन्दर्यानुभूति को प्राप्त करता है । उस समग्र सौन्दर्यानुभूति में लेखक द्वारा उठाए गए सामाजिक-सांस्कृतिक प्रश्न गौण बन जाते हैं । फलत: उन प्रश्नों की पड़ताल करने के लिए उस रचना का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन जरूरी है ।]

पंकज बिष्ट ने विविध सामाजिक पृष्ठभूमियों पर आधारित कहानियां लिखी हैं । पहाड़ी सामाजिक परिवेश के साथ-साथ, आधुनिक महानगरीय जीवन को आधार बना कर उन्होंने कई उत्कृष्ट कहानियां लिखी हैं । उन की कहानियां ठोस सामाजिक धरातल पर खड़ी हैं । फलत: उनकी कहानियां समकालीन सामाजिक यथार्थ को अपनी पूरी जटिलता तथा समग्रता में हमारे सामने लाती है । उनकी कहानियां सामाजिक चेतना से लैस हैं । स्वयं लेखक भी रचना की सामाजिक भूमिका को स्वीकारते हुए लिखता है -"..एक पिछड़े और संघर्षशील समाज का अंग होने के कारण हमारी सबसे बड़ी जिम्मेवारी उस समाज की आकांक्षाओं, संघर्षों व अपेक्षाओं को अभिव्यक्त और सम्प्रेषित करने की है ।"[1] स्वाभाविक है कि उनकी कहानियों में सामाजिक और सांस्कृतिक सवाल गहरे से गुन्थे होते हैं । यद्यपि लेखक ईमानदारी से अपनी सीमा स्वीकारते हुए कहता है -"ये कहानियां सामाजिक उत्पीड़न, उसके विरुद्ध संघर्ष और अन्तर्विरोधों को एक सीमा से अधिक अभिव्यक्त कर पाने में असमर्थ है ।"[2]

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ० 7
2. वही, पृ० 6

लेखक एक नए फार्म की तलाश में है, जिसे वह अपने समसामयिक यथार्थ की अधिक प्रामाणिक अभिव्यक्ति कर सके । क्योंकि कहानी का पुराना फार्म नए जटिल यथार्थ को अभिव्यक्त कर पाने में असमर्थ है । 'इसलिए यदि हम सही अर्थों में समाज के प्रति सजग हैं तो हमें इस सब को पहले समझना होगा । संकट चूंकि इन जटिलताओं से रूबरू होने का ही नहीं है, इन्हें `काउन्टर` करने का भी है, इसलिए चुनौतियां भी उतनी ही कठिन हैं । आज मालिक-मज़दूर संबंध उतने सीधे नहीं रहे हैं, इसलिए इन्हें अभिव्यक्त करने के लिए नए फार्म की ही जरूरत नहीं है, बल्कि बदलते संबंधों को भी ध्यान में रखना आवश्यक हो गया है ।'[1]

पंकज बिष्ट सामाजिक प्रश्नों के प्रति सजग कथाकार हैं । फलत: उनकी कहानियों में सामाजिक चेतना के विविध आयाम स्पष्ट रूप से नज़र आते हैं । पहाड़ी पृष्ठभूमि पर आधारित कहानियों में उन्होंने पहाड़ी सामाजिक जीवन को उकेरा है । उन्होंने पहाड़ी जीवन की समस्याओं, सामाजिक रूढ़ियों, स्थानीय समस्याओं को लेकर कई कहानियां लिखी हैं । साथ ही पहाड़ों से मैदान की ओर पलायन तथा प्रवासी मानसिकता को उजागर करने वाली कहानियां लिख कर सामाजिक यथार्थ के इस पहलू को भी उजागर किया है । नारी शोषण, जातीय अहंकार और विभाजन तथा साम्प्रदायिकता जैसे नए सामाजिक प्रश्नों को लेकर भी उन्होंने कहानियां लिखी हैं । इस दृष्टि से विचार करें तो पंकज बिष्ट ने पहाड़ी सामाजिक जीवन के विविध पक्षों को उजागर करने वाली कहानियां लिखी हैं ।

पंकज बिष्ट ने अपनी कहानियों को प्रामाणिक और अधिक जीवंत बनाने के लिए विविध सांस्कृतिक उपकरणों का भी सहारा लिया है । पहाड़ी पृष्ठभूमि पर लिखी गई उनकी कहानियों में पहाड़ की सांस्कृतिक परम्परा

---

1. पंकज बिष्ट - बच्चे गवाह नहीं हो सकते ?, पृ० 14

की समृद्ध झांकी दृष्टिगोचर होती है । विभिन्न उत्सव, मेले, तीर्थ, आदि का वर्णन , साथ ही धार्मिक रीति रिवाज तथा सांस्कृतिक उत्सव आदि का चित्रण कर, पहाड़ के सांस्कृतिक जीवन को साकार किया गया है । साथ ही आधुनिक संस्कृति का प्रभाव तथा उपभोक्तावाद के प्रभावों से आए बदलावों तथा उत्पन्न नई समस्याओं को भी उन्होंने अपनी कहानियों का विषय बनाया है ।

पहाड़ी पृष्ठभूमि के साथ साथ पंकज बिष्ट ने महानगरीय जीवन की अनेक कहानियां लिखी हैं । इन कहानियों में लेखक ने आधुनिक महानगरीय जीवन की सामाजिक सांस्कृतिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है । महानगरों में राजनीति का व्यक्ति पर पड़ता प्रभाव और आतंक, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में बदलाव, नए जीवन मूल्य, बढ़ता उपभोक्तावाद, अमीर-गरीब के मध्य बढ़ती खाई, अमानवीय परिस्थितियों का बढ़ते जाना जैसे विषयों को उठा कर लेखक ने अनेक कहानियां लिखी हैं । लेखक एक दो पात्रों के माध्यम से ही पूरे सामाजिक परिवेश को सामने लाने में सफल रहा है ।

लेखक द्वारा उठाए गए विविध सामाजिक-सांस्कृतिक प्रश्नों की गहन पड़ताल हम अगले अध्यायों में करेंगे, जिसके परिणामस्वरूप लेखक की सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना अधिक स्पष्ट रूप से सामने आ पाएगी ।

--

दूसरा अध्याय

पंकज बिष्ट का रचना संसार

पंकज बिष्ट का रचना संसार

लगभग 30 साल के अपने लेखकीय जीवन में पंकज बिष्ट ने, लेखन की मात्रा की दृष्टि से, अल्प ही लिखा है । अल्प लेखन के उपरांत भी उन्होंने अपने लेखन से समकालीन कथा साहित्य में अपनी एक निश्चित् जगह बना ली है । समकालीन उपन्यास और कहानी लेखन की चर्चा उनके बिना अधूरी ही मानी जाती है ।

पंकज ने साहित्य में अपनी पहचान प्रारम्भ में एक कहानीकार के रूप में बनाई । उन्होंने सन् 1970 के आसपास से कहानी लेखन शुरू किया । लेकिन एक लेखक के रूप में उन्हें उनके पहले उपन्यास `लेकिन दरवाजा` ने ही स्थापित किया । यह उपन्यास सन् 1982 में प्रकाशित हुआ । इसके अतिरिक्त अब तक उनका एक अन्य उपन्यास `उस चिड़िया का नाम ` प्रकाशित हो चुका है ।

यद्यपि कहानी लेखन में पंकज को लगभग 30 वर्ष हो चुके हैं, लेकिन अभी तक उनके मात्र तीन कहानी संग्रह ही प्रकाशित हुए हैं । `पन्द्रह जमा पच्चीस` (1980), `बच्चे गवाह नहीं हो सकते` (1985) के बाद उनका नवीनतम कहानी संग्रह - `टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां ।` प्रकाशित हुआ है।

(क) उपन्यास

`लेकिन दरवाजा` ने समकालीन उपन्यासकारों में एक महत्वपूर्ण उपन्यासकार के रूप में पंकज को स्थापित किया है । यह उपन्यास तत्कालीन उपन्यास लेखन में आई हुई जड़ता की स्थिति को भंग करता है और उपन्यास लेखन की दिशा में नए आयामों को रेखांकित करता है ।

`लेकिन दरवाजा` की पृष्ठभूमि दिल्ली का सांस्कृतिक जगत है । इस जगत के खदबदाते माहौल की सम्पूर्ण विकृतियों, विडम्बनाओं तथा

पाखण्ड को यह उपन्यास जीवंत रूप में पाठकों के सामने लाता है । इसके साथ साथ वर्ग संक्रमण तथा वर्ग संस्कारों की अपरिवर्तनीयता जैसे सवालों को भी लेखक अपना कथ्य बनाता है ।

कथावस्तु नीलांबर तथा देवेन नामक दो पात्रों के माध्यम से आगे बढ़ती है । देवेन कथावाचक के रूप में सामने आता है । उसी के द्वारा हमें नीलांबर के जीवन में घटित परिवर्तनों तथा सांस्कृतिक जगत की विडंबनाओं का बोध होता है । नीलांबर तथा देवेन दोनों पहाड़ी हैं तथा साहित्य के क्षेत्र में दखल रखते हैं । नीलांबर, देवेन से वरिष्ठ है तथा उसका दिल्ली की सांस्कृतिक हलचलों में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप भी है । नीलाम्बर का जो चरित्र हमारे सामने आता है, वह है एक अक्सरवादी प्रतिष्ठा और सम्मान के भूखे व्यक्ति का । उसके लिए सफलता प्राप्त करने के लिए कोई भी रास्ता निषिद्ध नहीं है। वह इसके लिए हर किसी का इस्तेमाल भी करता है और सफलता प्राप्त करता है । लेकिन देवेन, जो कि दिल्ली की सांस्कृतिक दुनिया में नया है, अभी आदर्शवाद से भरा है और उसे नीलांबर की ये गतिविधियां स्तब्ध करती रहती हैं । नीलाम्बर देवेन को भी यही उपदेश देता है -"ये दिल्ली है । अगर तुम खुद नहीं बताओगे कि तुम क्या हो और क्या कर सकते हो, तो यहां तुम्हें पूछने वाला कोई नहीं है, प्यारे ! अपनी पोजीशन का फायदा उठाना सीखो, लोगों से मिलो-जुलो, कहीं आया-जाया करो ।"[1] इसी जीवन दर्शन से वह न केवल सफल होता जाता है, वरन् दिल्ली के सांस्कृतिक जगत में ऊपर भी चढ़ता जाता है । देवेन भंडारी इन तौर तरीकों को पचा नहीं पाता और दस-बारह सालों से एक पत्रिका में सब एडीटर से ऊपर नहीं उठ पाता है। साथ ही वह लेखक के रूप में स्थापित नहीं हो पाता है, जिसका परिणाम होता है उसका

---

1. पंकज बिष्ट - लेकिन दरवाजा, पृ० 64

बढ़ता असन्तोष । इसी का परिणाम होता है कि वह न केवल नशीले पदार्थ लेने लगता है वरन् अंतत: एक मनोरोगी बन जाता है ।

उपन्यास का एक पात्र है - ममी अर्थात् मदनमोहन जो दिल्ली महानगर में फैली इस सांस्कृतिक व्यवस्था में पूरी तरह अलग-थलग है । उसके लिए लेखन एक आदर्श है और उस आदर्श को अगर स्वयं लेखक अपने जीवन में न उतारे तो लेखन व्यर्थ है । फलत: वह इस दुनिया में पूर्णत: असन्तुलित रहता है । अंतत: वह 'ब्रेन ह्यूमरेज' से एक दिन मर जाता है । इस प्रकार पंकज बिष्ट ने इस उपन्यास में दिल्ली के सांस्कृतिक जगत के माहौल को संवेदनापूर्ण ढंग से उकेरा है, जो हमें बाहर से अत्यधिक चमकीला दिखाई देने के बावजूद अन्दर से अत्यधिक वीभत्स है ।

इसके साथ ही उपन्यास में नीलांबर और सुमन के असफल वैवाहिक जीवन का भी चित्रण है । नीलाम्बर मूलत: एक निम्नमध्यवर्गीय व्यक्ति है जो बाह्यत: अपनी तमाम आधुनिकता के बावजूद अपने पुराने संस्कारों से बंधा है । सुमन आधुनिक जीवन मूल्यों में ढली उच्च मध्यवर्गीय परिवार की लड़की है, जिसके लिए नीलांबर के सारे लेखकीय आदर्शों का कुछ भी मूल्य नहीं । उसको अन्तत: पैसों से ही मोह है और उसके लिए नीलांबर की भी वही उपयोगिता ।

प्रारम्भ में नीलांबर, सुमन के स्वाभाविक आकर्षण में बंधा रहता है । सुमन की जिन्दगी का वैभव भी उसे चमत्कृत करता है । वह एक साथ ही लेखकीय जीवन के सम्मान और भौतिक जीवन के सुखों को प्राप्त करना चाहता है । इसके लिए वह छल, पाखण्ड का सहारा लेता है और प्रारम्भ में सफल भी होता है । सुमन से विवाह के बाद धीरे-धीरे उसका समस्त समय भौतिक सुखों को इकट्ठा करने में व्यतीत होता है और वह लेखन से दूर हटता जाता है । लेकिन नए जीवन में भी उसके अपने पुराने संस्कार आड़े आने लगते हैं । वह उस कृत्रिम जिन्दगी में घुटन महसूस करता है और उस से भागना चाहता है । फलत: सुमन और उसके संबंध तनावपूर्ण हो जाते हैं ।

अन्तत: वह सुमन से सम्बन्ध तोड़ कर देवैन के पास वापस चला आता है परन्तु वह सुमन और बच्चों के प्रति अपने प्रेम को भी भूल नहीं पाता । इस प्रकार वह एक प्रकार के व्यर्थताबोध से भर जाता है । सुमन उसे एक बार पुन: वापस बुला ले जाती है । लेकिन नई जिन्दगी में भी वह अपने आप को व्यवस्थित नहीं कर पाता । अंतत: वह आत्महत्या का प्रयास करता है । इस प्रकार पंकज ने मध्यवर्गीय संस्कारों को आधार बना कर वर्ग संक्रमण की स्थितियों का सहज चित्रण किया है ।

`लेकिन दरवाजा` में नायक नीलांबर, सांस्कृतिक जगत के दरवाजे को खोलने में चाहे सफल होता हो, लेकिन वर्ग संक्रमण के दरवाजे को वह नहीं खोल पाता है ।

`उस चिड़िया का नाम ` पंकज बिष्ट का दूसरा उपन्यास है । सन् 1982 में प्रकाशित यह उपन्यास दो पीढ़ियों के बीच के अन्तर्विरोध को सामने लाता है । पिता के प्रति विरोध कथा साहित्य में प्राय: दुहराया जाने वाला कथानक है । इसके माध्यम से हमेशा केवल एक संबंध और उसके भाव व्यापार का ही निरूपण मात्र नहीं होता, बल्कि अन्य अनेक कथ्य भी कथा में बदल जाया करते हैं । मात्र पीढ़ियों का अन्तर ही नहीं, बल्कि गति और अवरोध, प्रगति और प्रतिगामिता, विचार और विपदा, आदर्श और अकाति इत्यादि अनेक ऐसे अभिप्राय हैं जो विद्रोह को रूपाकार प्रदान करते हैं ।

उपन्यास का ताना-बाना चार-पांच मुख्य पात्रों के इर्द-गिर्द बुना गया है । सतह पर कहानी बेहद सीधी सरल दिखाई पड़ती है । उत्तराखण्ड के एक शांत गांव के निवासी अध्यापक दिवान सिंह अधिकारी का निधन हो जाता है । दिल्ली में डाक्टरी के पेशे में रत पुत्री रमा खबर मिलने पर पहुंचती है । बहुत देर हो चुकी है । बम्बई स्थित हरीश दा को खबर दी जाती है । उसके पहुंचने तक संस्कार रुके रहते हैं । खैर । वह पहुंच जाता है । स्थिति में जबरदस्त हस्तक्षेप लिए। आस-पड़ोस के लोग और

पिता के मित्र सिमानन्द क्रिया-कर्म में सक्रिय होते हैं । करीबी गांव की रहने वाली पार्वती भी आती है । सोलह सत्रह साल की बाल-विवाह की शिकार । पति कई साल से गायब है । अब वह अपने माता पिता के साथ ही रहती है । हरीश का मन क्रिया-कर्म से विमुख रहता है । वह एक चिड़िया की तलाश में पहाड़ों जंगलों में भटकता है । ताऊ सिमानन्द से उसकी बहस होती रहती है । इस बहसों में पहाड़ की वर्तमान स्थिति का मार्मिक चित्रण हुआ है । अभाव, पलायन, शोषण से मुद्दों की गहन पड़ताल की गई है ।लेकिन रमा को उसका पूरा व्यवहार असह्य लगता है । पर वह किसी के सामने आत्मसमर्पण नहीं करता । अलबत्ता भाई-बहन, स्मृतियों को जिलाने की कोशिश करते हैं । पिता के साथ पायरियाग्रस्त मां का संबंध, बच्चों के प्रति व्यवहार, जीवन के प्रति दृष्टिकोण, मां-बच्चों का संबंध, आदि । हरीश, रमा और सिमानंद ताऊजी के मध्य संवाद का सिलसिला जारी रहता है । फ्लैश बैक के जरिए विगत की घटनाएं जीवित होती चलती हैं । उसी के साथ-साथ वर्तमान भी प्रवाहमान रहता है । भूत और वर्तमान के बीच मृत पात्र और जीवित पात्र झूलते रहते हैं । कहानी ग्यारह दिन तक चलती है - श्राद्ध के रोज तक । कई कोशिशों के बाद भी चिड़िया नहीं मिलती, अन्य पात्र कयास लगाते रहते हैं - अमुक चिड़िया होगी । वे हरीश को चिड़ियों की कहानी सुनाते रहते हैं । पर, न चिड़िया का नाम का पता चलता है, न चिड़िया का । हरीश बम्बई लौट जाता है अपने बच्चे वरुण को तोते की कहानी सुनाने लगता है । रमा विगत से भाग कर विदेश जाने की तैयारी करने लगती है । हरीश कहानी सुनाते सुनाते मुंह ढांप लेता है । संभवत: वह रोना चाहता था । इसके साथ उपन्यास का अंत होता है ।

यद्यपि कहानी सीधी सपाट है, लेकिन कहानी का प्लाट व व्यंजना विविध व व्यापक हैं । वस्तुत: एक कहानी के समानान्तर कई कहानियां चलती हैं । एक कहानी है, हरीश व रमा के परिवार की कहानी । साथ

ही दूसरी कहानी है स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों पर लोक कथाओं के माध्यम से टिप्पणी करती कहानी । इसके साथ साथ व्यवस्था के अन्तर्विरोधों की कहानी भी लेखक ने उजागर की है । जीवन-मृत्यु के शाश्वत प्रश्न का भी लेखक सामना करता है ।

पंकज का यह उपन्यास बंद समाज के घुटे लोगों की कहानी है । हरीश के पिता का गांव गतिहीन गांव है । विकास की दृष्टि से पूर्व औद्योगिक स्वम् अर्द्ध विकसित कृषि युग में है । नए युग के संस्कार अभी वहां नहीं पहुंचे हैं । यद्यपि सड़क पहुंची है, मोटर पहुंची है परन्तु वैचारिक दृष्टि से अभी गांव 'गांव' ही बना है । लेकिन इस अर्द्ध-विकास ने शोषण के दरवाजे खोल दिए हैं । भूमि, जंगल और खनिज का दोहन कर पहाड़ को निर्जन व बंजर बनाया जा रहा है । पहाड़ों की वीभत्स स्थिति से लेखक पाठकों का साक्षात्कार कराता है । मुर्दा फूंकने तक के लिए लकड़ी नहीं बची है । अर्थी के लिए लकड़ी मिल जाय तो कन्धा देने के लिए पुरुष नहीं बचे हैं । पलायन द्वारा वे मैदानों को जा रहे हैं । स्थिति को खिमानंद ताऊजी सहज ढंग से व्यक्त करते हैं --'अरे, बेटा ! ये पहाड़ है । हमारा तो ये रोज का किस्सा हुआ । ये तो लकड़ी की बात है, अब तो ये नौबत है कि मुर्दा ले जाने वाले ही नहीं मिलते । अब तू ही देख, हमारे गांव में कितने जवान लोग होंगे, मुश्किल से तीन... ।'[1] समाज-शास्त्रीय शब्दावली का प्रयोग कर हरीश इसे 'मनीआर्डर इकानमी' से परिभाषित करता है । पलायन कर गए लोग, घर को जो पैसा भेजते हैं, उसी से पूरी व्यवस्था चलती है ।

लेखक ने उपन्यास में नारी की दयनीय स्थिति को बखूबी चित्रित किया है । औरत को घेरे रहने वाली बहुआयामी उत्पीड़न प्रक्रिया पर

---

1. पंकज बिष्ट - उस चिड़िया का नाम , पृ० 21

अच्छी बहस की गई है । हरीश से रमा कहती है, 'ताई कह रही थी, औरत और बैल के बिना यहां खेती नहीं होती । अजीब बात है, औरत को बैल के बराबर रखना ।' प्रतिवाद में हरीश कहता है, 'गलत, बैल ज्यादा महत्वपूर्ण है । असल में बैल यहां सिर्फ हल लगाने के काम आता है, उसके बाद उसे सारे साल खिलाना होता है... पर औरत का काम कभी समाप्त नहीं होता... उल्टा उसे बैल की भी टहल करनी होती है ।... कुल मिलाकर औरत एक उपयोगी जानवर है, जिसे जब चाहे खरीदा जा सकता ... जो बदलाव आ रहा है, वह और भी खराब है । यह उपयोगी और बहुधंधी जानवर अब दान में मिलने लगा है, साथ में दहेज की दक्षिणा भी मिलती है ... चाहे कन्यादान हो या दुल्हन का दाम, दोनों स्थितियों में लड़कियों को सम्पत्ति से अधिक कुछ नहीं माना जाता है ।'[1]

हरीश की मां दुर्गावती गरीब नहीं है, औरत है । इसलिए पति के द्वारा उत्पीड़ित होना उसकी नियति है । पार्वती औरत होने के साथ-साथ गरीब भी है । उसे दोहरे उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है । तभी तो वह रमा से कहती है, '... गरीबी आदमी को पागल ही बना देती है, समझे ।' उत्पीड़न एवं शोषण के चक्रव्यूह में फंसी औरत की गाथा उपन्यास में जगह जगह मुखरित हुई है । लेखक ने इसके लिए जादुई यथार्थ की टेक्नीक का सहारा लिया है, लोक कथाओं का प्रयोग किया है, फंतासी शैली अपनाई है, साथ ही गुजरी एक शताब्दी की घटनाओं का स्वाभाविक प्रयोग करयथार्थवादी प्रभाव पैदा करने की कोशिश की है ।

इसके अतिरिक्त उपन्यास में लेखक ने जीवन मृत्यु के प्रश्नों को भी उठाया है । मृत्यु और जीवन को लेखक समाज की गतिहीनता एवम् गतिशीलता

---

1. पंकज बिष्ट - उस चिड़िया का नाम , पृ० 158

के रूप में देखता है । नयी व्यवस्था का जन्म पुरानी व्यवस्था की कोख से होता है । वह इस प्रसव का स्वागत करता है । पिता की मृत्यु पर संलाप को लेकर हरीश और रमा के बीच बहस छिड़ी हुई है । हरीश का तर्क है, 'असल में मृत्यु को न स्वीकार करना, यह न मान पाना कि आदमी के शरीर का अंतत: विनाश होना लाज़िमी है, मानव सभ्यता का सबसे अजीब और दयनीय पक्ष है । यह मासूमियत है, उसकी लालसा का निकृष्टतम रूप है ... असल में इन सारे अनुष्ठानों के पीछे मृत्यु के मूर्खता-पूर्ण विरोध की भावना छुपी है...' । 'मृत्यु का विरोध पागलपन है ?' रमा ने पूछा । हरीश के लिए यह सवाल असहनीय है । वह पूछता है, 'क्या तुम इस दुनिया को बूढ़ों, अपाहिजों, सत्ता और सुख के भूखे तानाशाहों, नेताओं व पूंजीपतियों से भर देना चाहती हो ?'[1]

उपन्यास की समीक्षा करते हुए रामशरण जोशी लिखते हैं कि 'बंद समाज की 'गतिहीनता' से पात्रों के आंतरिक एवम् बाह्य संसार का निर्माण हुआ है । कुंठाओं को जन्म दिया है । बाप की कुंठा, नैतिक मूल्यों का संघर्ष और अन्त में आत्मसमर्पण । उपन्यास की विशेषता यह है कि लेखक ने व्यक्ति के निजी द्वन्द्वों पर, सांस्थानिक अंतर्विरोधों के प्रभावों को अच्छे ढंग से समेटा है । हालांकि कई जटिलताएं आ गई हैं । लेखक का तर्क है कि समाज व्यवस्था जितनी जटिल होगी, उसका चरित्र-चित्रण भी उतना ही पेचीदा होगा... । औद्योगिक समाज में विभिन्न सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक शक्तियों का इंटर-प्ले उग्र हो जाता है । सामंती औपनिवेशिक मूल्य-व्यवस्था में जी रहे लोगों पर इसका प्रभाव बहुआयामी पड़ता है । बहुआयामी प्रभाव को समझने एवम् दर्शाने की प्रक्रिया जटिल है । यह अस्वाभाविक नहीं है ।'[2]

---

1. पंकज बिष्ट - उस चिड़िया का नाम , पृ0 65
2. रामशरण जोशी - एक अंतहीन तलाश गुमनाम चिड़िया की, हंस । जुलाय 90 / पृ0 67

उपन्यास की रचना में पंकज ने समाजशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र, मानव शास्त्र जैसे गैरसाहित्यिक दृष्टियों का अच्छा-खासा प्रयोग किया है । इस बहुआयामी दृष्टि का प्रयोग करते हुए पहाड़ी समाज और मैदानी समाज के शताब्दी पुराने विविध आयामी सम्बन्धों की विवेचना करने में लेखक सफल हुआ है । इसमें लेखक ने सूक्ष्म से वृहत स्वम् वृहत् से सूक्ष्म को जोड़ा है ।

TH-7431

पहाड़ की जिंदगी स्वभाव से ही संरक्षणशील है । भीतरी भागों को तो विशेषकर इतिहास के धक्कों से दो चार नहीं होना पड़ा है । यही कारण है कि अपनी परम्पराओं, आस्थाओं और विश्वासों में शताब्दियों से जैसा का तैसा जीवित पहाड़ अब धीरे-धीरे बदलने लगा है । लेकिन यह दिशा दैन्य, अभाव और पीड़ा की ओर है । उपन्यास `उस चिड़िया का नाम ` इस पीड़ा और दैन्य को पहचानने का भी एक प्रयास है ।

`हंस` में इस उपन्यास की परख करते हुए अर्चना वर्मा ने ठीक ही लिखा है -` `उस चिड़िया का नाम ` छूटी हुई जगहों और छूटे हुए लोगों तक जा कर वापस लौट आने की एक विशिष्ट कहानी है । जाहिर है, इसे विशिष्ट बनाने वाली बात, इसकी वस्तु नहीं क्योंकि अतीत के साथ आदमी का रिश्ता या कि उसका स्मृति जगत रचना का विषय बार बार और कई प्रकार से बना है, बनता रहेगा । एक तरह से आदमी का अनुभव कोश ही उसका स्मृति कोश है । आजकल जब अपनी जड़ों की तलाश आदमी के रचनात्मक सरोकारों में चिंता का प्रमुख विषय है । तब तो खास तौर से कहा जा सकता है कि अतीतावलोकन वस्तु की हैसियत से नया नहीं है । फिर भी निस्सन्देह यह रचना विशिष्ट है । इसकी विशिष्टता है अतीत के साथ रचनात्मक स्तर पर आदमी के रिश्तों के अनेक स्तरों की जटिलता की पहचान और परख, जिसको कि लेखक ने अति निर्मम ढंग से पूरा किया है ।`[1]

DISS
O,152,3,N462:g(Y)
152 N8

----

1. अर्चना वर्मा - संस्मरण का स्मृति में रूपांतरण, हंस । जुलाय 90 । पृ0 63

(ख) कहानियां

जहां उपन्यासकार के रूप में पंकज बिष्ट चर्चा के केन्द्र में आए, वहीं कहानीकार के रूप में उनकी अधिक चर्चा नहीं हो पाई है । इसका सम्भवत: एक कारण यह भी हो सकता है कि उनका लेखन मात्रा की दृष्टि से सीमित रहा है । लगभग तीस वर्ष के अपने लेखन काल में उन के मात्र तीन कहानी संग्रह आए हैं । लेकिन पंकज बिष्ट उन लेखकों में से हैं जिन का लेखन इस बात से नहीं कि `कितना लिखना है`, बल्कि `क्या लिखना है ` से निर्धारित होता रहा है । यही कारण है कि सीमित लेखन के उपरान्त भी उनके विषयों की दिशा व्यापक है ।

उनका प्रथम कहानी संग्रह `पंद्रह जमा पच्चीस` सन् 1980 में निकला और दूसरा कहानी संग्रह `बच्चे गवाह नहीं हो सकते` सन् 1985 में । उनका तीसरा और अब तक का अन्तिम कहानी संग्रह `टुंड्रा प्रदेश तथा अन्य कहानियां ` 1995 में आया है ।

`पंद्रह जमा पच्चीस` कहानी संग्रह में सन् 70 से 80 के बीच लिखी दस कहानियां संकलित हैं । दूसरे कहानी संग्रह `बच्चे गवाह नहीं हो सकते ?` में बारह कहानियां संकलित की गई हैं, जिनका रचना काल सन् 1977 से 1985 के मध्य का है । लेकिन दो कहानियां `हल` और `लाजवाब` दोनों कहानी संग्रहों में शामिल की गई हैं । इस दृष्टि से दूसरे संग्रह में केवल दस नई कहानियां हैं । `टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां ` संग्रह उनका नवीनतम कहानी संग्रह है । इस संग्रह में नौ कहानियां हैं जो कि सन् 85 से 95 के मध्य लिखी गई हैं । इस प्रकार तीनों संग्रहों में मुल मिला कर 29 कहानियां संकलित हैं । इस दृष्टि से विचार करें तो 25 वर्ष में 29 कहानियां, अल्प लेखन ही कहा जाएगा ।

पंकज बिष्ट की कहानियों की दिशा बहुत व्यापक है । उनकी कहानियां समकालीन यथार्थ के विविध पहलुओं को समेटती हैं । फिर भी

उनकी कहानियों को अध्ययन की सुविधा के लिए दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) पहाड़ी पृष्ठभूमि पर आधारित कहानियां ।

(2) महानगरीय पृष्ठभूमि पर आधारित कहानियां ।

उनकी कुछ कहानियां ऐसी भी हैं जो मुख्यत: शहरी पृष्ठभूमि की हैं, लेकिन उनका जुड़ाव पहाड़ी जन-जीवन से अभिन्न है ।वस्तुत: ऐसी कहानियां `पहाड़ से महानगरों की ओर पलायन` जैसे सामाजिक यथार्थ को उभारती हैं । ऐसी कहानियों का अध्ययन पहाड़ी पृष्ठभूमि की कहानियों के साथ ही किया गया है ।

पहले कहानी संग्रह `पंद्रह जमा पच्चीस` की कुल दस कहानियों में से तीन पहाड़ी पृष्ठभूमि पर आधारित हैं । ये कहानियां हैं -`हल`, `हिमदंश` और `लाजवाब`, `बच्चे गवाह नहीं हो सकते`? `संग्रह में अगर `हल` और `लाजवाब` को छोड़ दें तो पहाड़ी पृष्ठभूमि पर आधारित कहानी केवल एक है - `आखिरी पहर` । संग्रह की शेष नौ कहानियां महानगरीय पृष्ठभूमि पर आधारित हैं । `टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां ` संग्रह की नौ कहानियों में तीन कहानियां पहाड़ी पृष्ठभूमि की हैं । इस प्रकार समग्र रूप से देखा जाए तो पंकज बिष्ट द्वारा अब तक लिखी गई 29 कहानियों में से सात कहानियां पहाड़ी पृष्ठभूमि पर आधारित हैं जबकि शेष 22 कहानियां महानगरीय जीवन को अपना आधार बनाती हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से यह प्रतीत होता है कि पंकज बिष्ट का झुकाव महानगरीय जीवन को आधार बना कर कहानी लेखन की ओर है । लेकिन यह आंशिक रूप से ही सत्य है । यदि संवेदना के धरातल पर देखा जाय तो पहाड़ी जीवन पर आधारित उनकी कहानियां, संख्या की दृष्टि से कम होने पर भी पहाड़ के जनजीवन के विविध पक्षों को सामने लाने में सफल हुई हैं ।

(1) पहाड़ी पृष्ठभूमि की कहानियां

पंकज बिष्ट के प्रथम कहानी संग्रह `पंद्रह जमा पच्चीस` में पहाड़ी पृष्ठभूमि की तीन कहानियां हैं । पहली कहानी है `हल` । यह कहानी पहाड़ी जीवन के एक प्रमुख पक्ष को सामने लाती है । घर का मुखिया रोजगार की तलाश में मैदान की ओर पलायन कर जाता है । फलस्वरूप घर में खेती के लिए हल की जिम्मेदारी छोटे लड़के पर आ पड़ती है, जो कि कच्ची उम्र में तड़के हल जोतने के कारण निमोनिया का शिकार हो जाता है और दवा के अभाव में असमय ही दम तोड़ देता है । लेकिन कहानी मार्मिकता से इस प्रसंग को उठाती है कि किस तरह घर की मालकिन भागुली, हल जोतने के लिए अपने छोटे लड़के पर जिम्मेदारी डालने के लिए मजबूर हो जाती है ।

इसी संग्रह की एक अन्य कहानी है `हिमदंश` । यह कहानी भी पहाड़ी जीवन में व्याप्त गरीबी एवम् वेदना को सामने लाती है । कथावाचक जो कि बाहर अध्ययनरत है, जब शहर से घर लौटता है तो पहाड़ी जीवन में व्याप्त अभाव का साक्षात्कार करता है । कहानी गरीबी के कारणों की तलाश भी करती है, साथ ही पर्यावरण जैसे मुद्दों को भी उभारती है । वस्तुत: कहानी में मुख्यत: पहाड़ के एक दूरदराज के गांव में दवा और डाक्टर के अभाव में असमय ही मौत के शिकार होने वाले ग्रामीणों की स्थिति का चित्रण है ।

पहाड़ी पृष्ठभूमि को आधार बना कर लिखी गई एक अन्य कहानी, जो इस संग्रह में है, वह है -`लाजवाब` । यद्यपि पहाड़ में सामान्य व्यक्ति का ही जीवन अभाव और दुर्दशा से ग्रस्त है, लेकिन उसमें भी समाज के सब से निम्न वर्ग की स्थिति और अधिक करुण है । `लाजवाब` कहानी पहाड़ी जीवन के ही एक अन्य पक्ष को सामने लाती है । बच्चीराम लोहार है । यह उसका खानदानी पेशा है । लेकिन एक बार बच्चीराम के पिता ने भी

उसे पढ़ा लिखा कर `बड़ा` आदमी बनाने का सपना देखा था । यह सपना भी तब देखा था जबकि आजादी के बाद सरकार द्वारा बड़े जोर शोर से शिक्षा प्रसार का काम चला ।`मुख्यमंत्री` की प्रेरणा से ही बच्चीराम के पिता ने बच्चीराम को स्कूल भेजा था । लेकिन कहानी बड़ी मार्मिकता से इस विडम्बना को सामने लाती है कि न केवल बच्चीराम वरन उसका बेटा भी अन्ततः अपने खानदानी पेशे से बाहर नहीं निकल पाया ।

अरुण कुमार ने इन कहानियों पर टिप्पणी की है कि `हल` और `लाजवाब` पहाड़ी जीवन पर लिखी कहानियां हैं, लेकिन इनमें घटनाओं के प्रभाव का सम्प्रेषण न हो पाने के कारण वैसा तनाव भी नहीं उत्पन्न हो पाया है, जैसा कई दूसरी कहानियों में है । दरअसल पहाड़ से शहरों में हमेशा के लिए आ गए लेखकों में पहाड़ के प्रति स्वभावतः नास्टेलिजया है और सम्भवतः एक अपराध बोध भी । इसीलिए उनके लेखन में निर्जन और निर्धन होते पहाड़ों का जीवन केवल एक तिक्तता पैदा कर पाता है ।`[1] लेकिन पंकज बिष्ट अपनी कहानियों के माध्यम से पहाड़ के जीवन के विविध पक्षों को मार्मिकता से सामने लाते हैं । पंकज बिष्ट की ये कहानियां उनके प्रारम्भिक प्रयास हैं, इस कारण कहीं-कहीं सपाटता दृष्टिगोचर होती है ।

दूसरे कहानी संग्रह `बच्चे गवाह नहीं हो सकते ` में पहाड़ी पृष्ठभूमि की तीन कहानियां हैं, लेकिन दो कहानियां `हल` और `लाजवाब` पहले संग्रह में भी शामिल हैं । फलतः इसमें केवल `आखिरी पहर` को ही पहाड़ी जीवन पर आधारित एकमात्र नई कहानी कहा जा सकता है ।

`आखिरी पहर` पहाड़ी जीवन पर लिखी अलग तरह की कहानी है । इसमें ठण्ड, बरसात, अन्धेरे और बाघ के बीच अपने भेड़-बकरियों के साथ

---

1. साक्षात्कार, अप्रैल-जून, 1987, पृ० 131

फंसा हुआ असहाय चरवाहा है, जिसके पास कुल पूंजी अपनी हिम्मत ही है । वातावरण का चित्रण ही इस कहानी की संवेदना के मूल में है - `अंधकार जमकर अभेद्य हो चुका था । उसने इधर-उधर हाथ से झपझपा कर देखा । आग न जाने कब की बुझ चुकी थी । वर्षा अभी भी उसी रफ्तार से हो रही थी । वर्षा की आवाज के साथ मिलकर `नीचे नदी का स्वर और भी कई गुना भयावह और एकरस हो चुका था । एकांत और असाध्यता की पीड़ा को और भी सघन व तीव्र बनाता, हवा भी इस बीच गुर्राने लगी थी, जैसे कोई खूंखार जानवर आक्रमण से पहले क्रोध में अपना पंजा जमीन पर रगड़ता है । बकरियों और भेड़ों की मिमियाहट और बेचैनी बढ़ती जा रही थी ।`[1] हिन्दी में यह अपने तरह की विशिष्ट कहानी है ।

`टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां` संग्रह में पहाड़ी जीवन को आधार बना कर लिखी गई तीन कहानियां हैं - `मुकाम`, `... कुजरो वा ।`, `मोहन राम (दास), आखिर क्या हुआ ?` ।

`मुकाम` कहानी में एक वृद्ध व्यक्ति के स्थान परिवर्तन की कहानी है । जिन्दगी पर पहाड़ में जीवन व्यतीत करने के उपरान्त कथानायक को अपनी वृद्धावस्था में अपने लड़कों के पास महानगर जाना पड़ता था । लेकिन महानगर की आपाधापी में जीवन की सहजता कहीं खो जाती है । महानगर के इस दमघोंटू वातावरण में उसे पहाड़ी के जीवन की सहजता अपनी ओर खींचती है और वह अन्त में महानगर को छोड़ कर पहाड़ वापस लौट आता है । कहानी वृद्ध व्यक्ति की नई स्थिति का बखूबी चित्रण करती है ।`प्रारम्भ में बच्चों के बीच उन्हें काफी शांति मिली थी, पर धीरे-धीरे उनकी समझ में आ गया कि नहीं, इस दुनिया में वह आरोपित

---

1. पंकज बिष्ट - बच्चे गवाह नहीं हो सकते, पृ० 25

हैं या कह लीजिए अतिरिक्त हैं । यह एक अलग ही संसार था । उसके लिए बिलकुल अपरिचित और अनजान, जहां हर व्यक्ति की अपनी एक दुनिया थी ।'[1]

'... कुंजरो वा ।' समसामयिकयथार्थ के एक नए पक्ष को सामने लाती है । पहाड़ी जनजीवन भी साम्प्रदायिकता जैसे नए विचारों से ग्रसित होने लगा है । राजनीति किस प्रकार मित्र-भाव से रहने वाले जनसमुदाय में घृणा पैदा कर देती है, कहानी इसका सटीक चित्रण करने में सफल हुई है । कहानी वस्तुत: समकालीन साम्प्रदायिक राजनीति के घिनौने षडयन्त्र को सामने लाती है । एक पहाड़ी कस्बे के लोग समकालीन साम्प्रदायिक नारों और विचारों से प्रभावित होकर 'अख्तर' जैसे व्यक्ति के प्रति घृणा से भर उठते हैं, जो कि उन सब का लम्बे समय से दु:ख-सुख का साथी रहा है । सभी कस्बे के वासी गुपचुप रूप से 'अख्तर' की बकरी मार कर खा जाते हैं । लेकिन जब 'अख्तर' की मार्मिक वेदना से उनका साक्षात्कार होता है तो धर्मभीरु जनता प्रायश्चित करने को भी तैयार होती है । वस्तुत: कहानी प्रतीकात्मक ढंग से समकालीन यथार्थ पर गहरी टिप्पणी करती है । इस प्रकार कहानी परिवर्तन के किसी चालू मुहावरे का शिकार नहीं होती । यह पंकज बिष्ट की कहानियों की एक प्रमुख विशेषता है । इसी को उजागर करते हुए विनोद दास ने टिप्पणी की है --'... उनके यहां परिवर्तन किसी सामाजिक क्रांति चेतना से उद्भूत नहीं है, बल्कि घोर भय और हिंसा के वातावरण में भी मनुष्य के अंतर्मन की पोटली में छिपी रहने वाली उम्मीद, सहानुभूति और करुणा की पूंजी से परिवर्तन की आकांक्षा अपना सत्व ग्रहण करती है ।'[2]

---

1. पंकज बिष्ट - टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां, पृ0 39
2. विनोददास - परिवर्तन का घोष, इंडिया टुडे - 30 सित0, 1996, पृ0 87

'मोहनराम (दास) आखिर क्या हुआ ?' एक पहाड़ी लड़के के अपने गांव को छोड़, काम की तलाश में महानगर आकर घरेलू नौकर के रूप में काम करने की कहानी है । मोहन जब शहर आकर सरदार तेजेंदर सिंह बवेजा के घर नौकर बनता है तो उसे दूसरी दुनिया के दर्शन होते हैं । वह अपने गांव की गरीबी और शहर के वैभव की तुलना करता है और शहर की समृद्धि को देख चकाचौंध रह जाता है । कहानी अतिनाटकीय शैली में उजागर करती है कि भीषण शहरी उपभोक्तावाद का शिकार होकर निरीह मोहन की सहजता समाप्त हो जाती है । कहानी अपनी शिल्प संबंधी विशेषता से भी सहज ही ध्यान आकर्षित करती है - 'कैसे भी कोई कह ही कैसे सकता है कि सपने में दुर्घटनाएं नहीं होतीं । सपना एक सच्चाई है तो दुर्घटना उससे जुड़ी दूसरी सच्चाई । फिर भी सपने ही को नकार दें तो बात और है । मानते हैं तो फिर घातक भी होगी । आखिर यों ही तो नहीं कहा गया है - सावधानी हटी, दुर्घटना घटी । यानी ऐसे सपने देखे ही नहीं जाने चाहिए, जो किसी भी तरह की दुर्घटना की ओर ले जा सकते हैं । विशेषकर उन सपनों से तो बचना ही होगा, जो घातक होने की संभावना मात्र का आभास भी देते हों ।'[1]

(2) महानगरीय पृष्ठभूमि पर आधारित कहानियां

यद्यपि पंकज बिष्ट ने पहाड़ी पृष्ठभूमि को आधार बनाकर उत्कृष्ट कहानियां लिखी हैं, तथापि उनका अधिकांश लेखन महानगरीय पृष्ठभूमि पर आधृत है । वस्तुतः पंकज बिष्ट आधुनिक महानगरीय जीवन की जटिल संवेदना को अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त करने के लिए ही अधिक चर्चित हैं ।

---

1. पंकज बिष्ट - टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां, पृ० 126

`पंद्रह जमा पच्चीस` संग्रह में संकलित कहानी `कीचड़` महानगरीय जीवन में आए बदलावों को चित्रित करती है । बढ़ती गरीबी के परिणाम-स्वरूप समाज में आए नैतिक पतन को कहानी सामने लाती है । कहानी का ताना बाना एक दुर्गन्धयुक्त चाय की दुकान के आसपास बुना गया है,जहां का बाह्य वातावरण ही कीचड़ से भरा नहीं है वरन् मानसिक और चारित्रिक स्तर भी दुर्गन्धपूर्ण हो चुका है । यहीं एक व्यक्ति आकर अपनी औरत से देह व्यापार कराता है । पूरा समाज इस घटना को सहजता से लेता है । लेखक समाज में व्याप्त इसी नैतिक कीचड़ को सामने लाना चाहता है और इसमें सफल हुआ है ।

कहानी `समारोह` दफ्तर के एक चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी `सुखीलाल` की कहानी है । `सुखीलाल` जिन्दगी भर चपरासी की नौकरी करता रहा है और उसे कभी प्रमोशन भी नहीं मिला है । लेकिन जब सुखीलाल का विदाई समारोह आयोजित होता है तो उसे उस दिन कुछ महत्व प्राप्त होता है । विडम्बना यह है कि सुखीलाल की विदाई के समारोह के साथ दफ्तर के डायरेक्टर मल्होत्रा साहब का भी विदाई समारोह आयोजित किया गया है । इस कारण `मल्होत्रा साहब` का ही महत्व समारोह में छाया रहता है और सुखीलाल हंसी का पात्र बन जाता है, लेकिन सुखीलाल अपने अंतिम वक्तव्य से समारोह के सारे पाखंड को उभाड़ देता है । सुखीलाल कहता है, `महोदय मैं नाचीज हूं । इसी दफ्तर में मैंने नौकरी शुरू की, यहीं रिटायर हो रहा हूं । मेरे सामने कई लोग आए और गए । अब हमारे मोटवाणी साहब भी मेरे सामने आए थे । विद्वान आदमी थे । क्लर्क हो कर आए और इतनी उन्नति करके इस पद तक पहुंचे हैं । ईश्वर के वह रिटायर होने से पहले डायरेक्टर हो जाएं । पर हुजूर, हम नाचीज़ तो नाली के कीड़े हैं, जहां थे, वहीं लोट रहे हैं । हमारी गलतियों पर अगर आप जैसे लोग ध्यान देंगे तो हुजूर हमें सर छुपाने की जगह कहां रहेगी ।`[1]

---

1. पंकज बिष्ट - पंद्रह जमा पच्चीस, पृ0 40

`प्रतिचक्र` एक सामान्य कहानी है जो बेटे के निधन के उपरान्त पैदा होने वाले शोक और खौफ को चित्रित करती है । कहानी की संवेदना भी स्पष्ट होकर सामने नहीं आ पाती । कहानी एक प्रकार की सतही भावुकता का शिकार हो गई है । स्वयं लेखक संग्रह की भूमिका में स्वीकार करता है कि `कहानी की पिछली परम्परा के प्रभाव के कारण `क्यों,` `अर्थी `, `प्रतिचक्र ` और एक सीमा तक `हिमदंश` और `समारोह` भी भावुकता, शिल्प और कला की विकृतियों का शिकार हो गई हैं ।`[1]

`फर्क ` एक पढ़े लिखे नौजवान की कहानी है जो एक जूते की दुकान में सेल्समैन है । उसे वहां उच्च वर्ग के जीवन के बारे में पता चलता है, लेकिन उसकी धारणा यथार्थवादी है, जबकि उसका दोस्त कल्पनाओं में जीने वाला है । उच्च जीवन की ललक उसे अपराध के रास्ते पर ले जाती है और नैतिक रूप से पतित कर देती है । कहानी समाज में आए नैतिक बदलाओं और विडम्बनाओं की सशक्त पड़ताल करती है ।

`पन्द्रह जमा पच्चीस` भी गरीबी और मजबूरी में व्यक्ति के नैतिक मूल्यों में आए परिवर्तनों का मार्मिक चित्रण करती है । `परदुमन` विभाजन के बाद भारत आया एक गरीब ब्राह्मण नौजवान है । वह एक प्रेस में कम्पोज़ीटर की नौकरी करता है, लेकिन गरीबी के कारण टी.बी. का शिकार हो जाता है परन्तु उचित खुराक का अभाव है । परिणामस्वरूप उसे अपने संस्कारों को ताक पर रख कर मुसलमानों की दुकान से खरीद कर मांस खाना पड़ता है ।

`खोखल` एक प्रतीकात्मक कहानी है, जो इमर्जेंसी के दौरान उत्पन्न राजनीतिक आतंक को चित्रित करती है । कथानायक को लगातार

---

1. पंकज बिष्ट - पंद्रह जमा पच्चीस, पृ० 5

यह शंका रहती है कि उसका पीछा किया जा रहा है । लेखक के अनुसार - `मैं इस कहानी को पूरी तरह राजनीतिक मानता हूं और यह एक स्थिति विशेष व समय, बल्कि कुछ मायने में तो तथाकथित `स्वतन्त्र समाज` में चली आ रही स्थिति को चित्रित करने का प्रयत्न है ।`[1]

`कवायद` भी इसी प्रकार की कहानी है, जो कि प्रतीकात्मक शैली में आपातकाल की स्थितियों को चित्रित करती है ।

`शबरी शर्मा बीमार है `, राजनीतिक मूल्यहीनता और अवसर-वादिता को दिखाती है । राजनीति में महिलाओं की स्थिति का यह कहानी अच्छा प्रत्याख्यान करती है । राजनीति में `शबरी शर्मा ` का शोषण होता है, लेकिन वह स्वयं खुशी खुशी इसे स्वीकार करती है । अंतत: जब वह इस पूरी प्रक्रिया में घिर जाती है तो अकेले पड़ जाती है जहां उनका साथ देने वाला कोई नहीं है ।

`पंद्रह जमा पच्चीस` पंकज विष्ट का प्रथम कहानी संग्रह है, जिस कारण इस संग्रह की कहानियों में कहीं कहीं स्थूलता दृष्टिगोचर होती है । लेखक स्वयं स्वीकार करता है कि `ये कहानियां (विशेषकर `हिमदंश`, `समारोह`, `हल` और `शबरी शर्मा बीमार है `) सामाजिक उत्पीड़न, उसके विरुद्ध संघर्ष और अंतर्विरोधों को एक सीमा से अधिक अभिव्यक्त कर पाने में असमर्थ हैं । संघर्षरत जनता की महत्वाकांक्षाओं और आशाओं को अभिव्यक्त करने तथा उन्हें दिशा देने के स्थान पर एक `सामाजिक सुधारवादी` एक्सपोज़र की, जो आधुनिक पत्रकारिता का लटका है, शिकार हो गई है ।`[2] लेकिन फिर भी ये कहानियां यथार्थ के विभिन्न पक्षों को सामने लाने में सफल हुई हैं तथा भविष्य के लिए नई संभावनाओं के द्वार खोलती हैं ।

---

1. पंकज बिष्ट - पंद्रह जमा पच्चीस, पृ0 5
2. वही, पृ0 6

'बच्चे गवाह नहीं हो सकते ' की समीक्षा करते हुए अरुण कुमार कहते हैं -'बच्चे गवाह नहीं हो सकते पंकज बिष्ट का दूसरा और ताजा कहानी-संग्रह है । इस संग्रह में पिछले आठ वर्षों के दौरान लिखी कहानियां संकलित हैं । बिष्ट ने अपनी कहानियों में समकालीन जीवन-स्थितियों की त्रासदी को उसकी जटिल संश्लिष्टता में उकेरने की कोशिश की है । चूंकि कहानी मनुष्य जीवन के एक क्षण का मूर्त चित्र है (ऐसा मूर्त चित्र जो एकदम इकहरा हो, लेकिन जिसकी सम्पूर्णता खण्डहीन हो) इसलिए कहानी का प्रभाव जहां एक ओर लेखक की सूक्ष्म दृष्टि और इतिहास-बोध पर निर्भर करता है, वहीं दूसरी ओर अनुभव, भाषा की सामर्थ्य, और लाघव की कला के प्रयोग पर । बिष्ट जब इसमें सफल हो पाते हैं, तब उनकी कहानियां में एक आन्तरिक लय पैदा होती है और रचना का तनाव निर्मित होता है ।'[1]

'आवेदन करो ' एक बेरोज़गार युवक की त्रासद स्थितियों का चित्रण करती है । बेरोजगार युवक की यंत्रणा को लेखक ने प्रतीकात्मक ढंग से उभारा है । फलत: कहानी सपाटबयानी से बच गई है और जटिल संवेदना को सामने लाने में सफल रहती है ।

संग्रह की सबसे प्रभावशाली कहानी 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते ?' ही है । परम्परागत संस्कारों, आर्थिक विवशताओं और पूंजीवादी उपभोक्ता संस्कृति के समन्वय ने भारतीय निम्न मध्यवर्ग के जीवन को किस स्तर तक दिशाहीन और दारुण बना दिया है, यह कहानी इसका ऐतिहासिक दस्तावेज है । निम्नवर्ग कर्मचारियों की कालोनी में रहता क्षयग्रस्त क्लर्क पिता इससे आहत है कि उसके बच्चे चपरासियों के घर टी.वी. देखने जाते हैं और दुत्कारे जाते हैं । पिता अपने सम्मान और बच्चों के लिए प्राविडेंट फंड से ऋण लेकर किश्त पर टी.वी. खरीदता है । पिता आर्थिक मजबूरी में अपना इलाज नहीं कराता है । लेकिन जब वह रविवार को

---

1. साक्षात्कार - अप्रैल-जून, 1987, पृ० 130

टी. वी. पर फिल्म देख रहा होता है, तब इंटरवल में जब विज्ञापनों की बमबारी हो रही होती है तो अचानक पिता के मुंह से रक्त की तेज धार निकलती है और वह ढह जाता है । स्तब्ध बेटे ने उसी समय अपनी आंखों से टी.वी. के पर्दे पर (से) गोली चलती देखी थी ।

`ये चिड़ियाघर है` कहानी वर्तमान व्यवस्था और सरकारी तंत्र पर करारा व्यंग्य करती है । जेबरा, जो कि चिड़ियाघर में एक दुर्लभ जानवर है, मरा पाया जाता है । चूंकि जेबरा, अतिदुर्लभ प्रजाति का है, फलत: उसकी मृत्यु की जांच के लिए एक आयोग गठित कर दिया जाता है । जांच के बाद पता चलता है कि चिड़ियाघर के ही एक हाथी ने जेबरा को मार डाला था । लेकिन अन्तत: सरकारी तंत्र में सजा तो किसी को देनी ही है । फलत: हाथी के महावत को लापरवाही के आरोप में नौकरी से बर्खास्त कर दिया जाता है ।

`बेल` कहानी एक स्त्री-पुरुष के बीच पनपने वाले संवेदनशील सम्बन्ध को उकेरती है । कहानी समय के साथ इन सम्बन्धों में आने वाले परिवर्तन को सूक्ष्मता के साथ चित्रित करती है ।

`होमवर्क ` कहानी परम्परागत भारतीय परिवारों में मां की भूमिका और चरित्र को रेखांकित करती है । मां कृषक परिवार से आई है और पढ़ाई-लिखाई से उसका नाता नहीं रहा है, लेकिन मां इसे शर्म की चीज़ नहीं समझती । उच्च शिक्षित पति और बाद में बच्चे भी उसे कुछ पढ़ा-लिखा देने की कोशिश करते हैं । पर मां इसकी बिलकुल जरूरत नहीं मानती है । पिता वृद्धावस्था में जीभ के कैंसर से पीड़ित हो गए हैं और अपनी बात समझाने के लिए लम्बे-लम्बे नोट लिखते हैं । इसी को समझने के लिए मां अब चुपके से पढ़ाई करती है और उसकी पोती उसे `होमवर्क ` देती है ।

`खिड़की` में पंकज बिष्ट ने यथार्थ की जादुई शैली का प्रयोग किया है । क्रांतिकारी कवि की रचनाएं, आग उगलती हैं, जिससे टाइप पिघल जाते

हैं । चिंतित सत्ता प्रतिष्ठान क्षिप्रता से कवि को सुविधाएं और सम्मान उपलब्ध कराता है । फलत: लेखक सुविधाओं से भर कर, बन्द कमरे में ऊब से भर उठता है । वह खीझता हुआ कमरे की खिड़की खोलना चाहता है तो बैरा अदब से बताता है कि खिड़की खोलने से एयर कंडीशनर काम नहीं करेगा।

`जीना` कहानी पारिवारिक संबंधों पर आर्थिक कारणों के प्रभाव की विवेचना करती है । पति के निधन हो जाने पर ससुर चाहते हैं कि बहू, अपने देवर से विवाह कर ले, क्योंकि बहू नौकरी करती है और देवर बेरोजगार है ।

`खून` कहानी भी स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की पड़ताल करती है । अलग-अलग धर्मों के होने के कारण, लड़का और लड़की परस्पर प्रेम करने के बावजूद सामाजिक घृणा और प्रतिशोध के शिकार होने के लिए मजबूर हैं ।

अरुण कुमार लिखते हैं -`यों संग्रह में `जीना` और `खून` जैसी कहानियां भी हैं जिनमें घटनाओं का ही रोमांच है । ऐसी कहानियां यंत्रणाजनक सामाजिक परिस्थितियों पर टिप्पणी तो करती हैं, लेकिन संवेदना को गहरे तक स्पर्श नहीं कर पातीं ।`[1]

`मोहनजोदड़ो ` कहानी फंतासी शैली में लिखी गई कहानी है जो घृणा और प्रतिक्रियावादी विचारों के घर-घर तक फैल जाने को चित्रित करती है ।

`टुंड्रा प्रदेश तथा अन्य कहानियां ` तक आते आते पंकज बिष्ट अपनी कहानी कला को एक सुस्पष्ट पहचान देने में सफल होते हैं । जादुई यथार्थ-वाद और फंतासी का प्रयोग कर उन्होंने इस संग्रह में कई उत्कृष्ट कहानियां लिखी हैं । इस संग्रह की समीक्षा करते हुए विनोद दास ने कहा है कि

---

1. साक्षात्कार, अप्रैल-जून, 1987, पृ0 132

'समकालीन कथा परिदृश्य का तुमुलनाद बहुत सुनाई देता है, लेकिन दैनिक जीवन की साधारणा घटनाओं के महीन धागों से मानवीय मूल्यों को रचने वाला कथा-बोध इधर विरल है । पंकज बिष्ट इसके सुखद अपवाद हैं । वे ऐसे कथाकार हैं जिनकी कहानियां सामाजिक सच्चाइयों में विन्यस्त होने के बावजूद सामान्यीकरण से मुंह मोड़े रहती हैं और अपने सघन तथा उत्कट संवेदन से अमानवीय पक्षों के विरुद्ध नैतिक हस्तक्षेप करती हैं । इसका सार्थक सृजनात्मक साक्ष्य उनका यह कहानी संग्रह है । इससे गुजरते हुए महसूस होता है कि बिष्ट को अपने समय की चारित्रिक विसंगतियों की संकेतात्मक पहचान है ।'[1]

संग्रह की पहली कहानी 'दुर्गंध' हमारे देश में व्याप्त भयानक गरीबी का साक्षात्कार कराती है । कहानी का अतिरंजनापूर्ण शैली में होना इसकी प्रभावोत्पादकता को द्विगुणित करता है । कहानी गरीबी के साथ-साथ समाज के भद्र वर्ग की रुचियों, संस्कारों को सामने लाती है । तथा अपने ही समाज के एक हिस्से से पूरी तरह अपरिचित इस वर्ग की संवेदनहीनता पर चोट करती है ।

स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर पंकज बिष्ट ने कई कहानियां लिखी हैं । कुछ सामान्य तो कुछ जटिल संबंधों को उजागर करती हैं । 'ऐसा तो नहीं होगा...' भी इसी प्रकार की एक सामान्य कोटि की कहानी है । लड़के और लड़की में शादी से पहले सम्बन्ध बन जाते हैं और लड़की गर्भवती हो जाती है । इस कारण उन दोनों के मध्य शंका, तनाव, भय के मनोभावों को कहानी भली भांति उभारती है । लेकिन जब यह पता चलता है कि गर्भ की बात मात्र एक गलतफहमी थी तो दोनों के मध्य का व्यवहार पुन: बदल जाता है ।

---

1. विनोद दास - परिवर्तन का घोष, इंडिया टुडे - 30 सित० 96, पृ० 87

`टुंड्रा प्रदेश` संग्रह की सर्वाधिक संवेदनशील कहानी है । यद्यपि कहानी का घटनाक्रम मात्र इतना है कि एक छोटा लड़का ठण्ड में मूंगफली बेचता है, लेकिन ग्राहक आ नहीं रहे हैं और वह थोड़ी-बहुत कमाई कर लेना चाहता है । अपने को गर्म रखने के लिए अपने छोटे भाई का `टायर` भी जला डालता है । लेकिन इसके बाद उसमें आत्मग्लानि का भाव पैदा होता है तथा वह छोटे को खुश करने का हरसंभव प्रयास करता है और अंतः दोनों भाई पारस्परिक सम्बन्धों की उष्णता के साथ घर लौटते हैं । लेकिन इसी कथाक्रम के मध्य कथाकार ने लड़के के मन में उठने वाले विचारों और भावों को जीवंत कर कहानी को मार्मिक बना दिया है ।

`उस गोलार्द्ध में ` कहानी आधुनिक महानगरीय परिवेश में विघटित होते परिवार की कहानी सामने लाती है । भास्कर और उसकी पत्नी परस्पर के टकराव के कारण तलाक ले लेते हैं । लेकिन भास्कर अपने पुत्र के प्रति लगाव को छोड़ नहीं पाता । यद्यपि ऊपर से वह संबंधों के प्रति संवेदनहीन जान पड़ता है । लेकिन जब वह अपने दोस्त के बेटे को साइकिल भेंट करता है तो पता चलता है कि उस दिन उसके बेटे का जन्म दिन था । इस प्रकार से वह अपने बेटे के प्रति लगाव को प्रकट करता है ।

`क्या कहना है जटायु ` समकालीन यथार्थ से सीधे उठाई गई कहानी है । घृणित साम्प्रदायिक वातावरण के मध्य भी मनुष्यता की तलाश करती कहानी, जादुई शिल्प का प्रयोग कर अधिक सार्थक बन गई है । साम्प्रदायिक दंगों की वीभत्सता को कहानी यथार्थ रूप में सामने लाने में सफल हुई है । कथानायक अंतः अपने कायरपन को त्याग कर दंगाईयों के हाथ से `नसरीन` को छुड़ा लाता है और वह आभार व्यक्त करने के लिए अपने विरोधी धर्म उन्मादियों को अपनी पहचान बता कर, उनकी मनुष्यता को झकझोर डालती है ।

`खेल` कहानी भी महानगरीय जीवन में व्याप्त सम्बन्धों की यांत्रिकता को चित्रित करती है । किसी प्रसिद्ध साहित्यकार के अंतिम

संस्कार का अवसर भी किस प्रकार विभिन्न लोगों द्वारा अपने-अपने कार्यों को आगे बढ़ाने के लिए प्रयोग किया जाता है, इसे कहानीकार ने सशक्त ढंग से अभिव्यक्त किया है । अंतिम संस्कार की पूरी प्रक्रिया और शोक प्रदर्शन भी अंतत: एक खेल ही बन जाता है ।

इस प्रकार हम पाते हैं कि पंकज बिष्ट के दो सशक्त उपन्यास और तीन चर्चित कहानी संग्रह, हिन्दी कथा साहित्य में अपनी महत्व-पूर्ण उपस्थिति दर्ज करते हैं । कहा जा सकता है कि समसामयिक उपन्यास और कहानी विधा को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करने में पंकज बिष्ट की भी एक महत्वपूर्ण भूमिका है ।

अध्याय - 3

पंकज बिष्ट की कहानियों का सामाजिक अध्ययन

पंकज बिष्ट की कहानियों का सामाजिक अध्ययन

इस अध्याय में पंकज बिष्ट की कहानियों का सामाजिक अध्ययन किया गया है । चूंकि पंकज बिष्ट की कहानियां पहाड़ी परिवेश और मैदानी/ शहरी पृष्ठभूमि दोनों को अपना आधार बनाती हैं, अत: उनकी कहानियों में दोनों प्रकार के जीवन का विशद चित्रण मिलता है । फिर भी कहा जा सकता है कि उन्होंने अपनी पहाड़ी पृष्ठभूमि की कहानियों में सामाजिक जीवन को अधिक गहराई और संवेदनापूर्ण ढंग से चित्रित किया है । शहरी पृष्ठभूमि की कहानियों में उन्होंने व्यक्ति के जीवन और नए सम्बन्धों की पड़ताल पर ही अधिक जोर दिया है । यही कारण है कि जहां उनकी पहाड़ी पृष्ठभूमि की कहानियों में सामाजिक समस्याओं और सामाजिक चेतना के विविधआयाम दृष्टिगत होते हैं, वहीं महानगरीय पृष्ठभूमि की कहानियां सामाजिक दृष्टि से एक विशिष्ट वर्ग की अर्थात् मध्यवर्ग की कहानियां प्रतीत होती हैं । प्रस्तुत अध्ययन में पहाड़ी परिवेश की कहानियों के सामाजिक अध्ययन पर अधिक प्रकाश डाला गया है ।

हिन्दी कहानी के प्रारम्भ से ही पहाड़ी परिवेश को लेकर कई कहानीकार सामने आए हैं । इलाचन्द्र जोशी, शेखर जोशी, बटरोही, शैलेश मटियानी, मृणाल पाण्डे, हिमांशु जोशी, संजय खाती, प्रदीप पंत जैसे कई कहानीकारों ने पहाड़ी अंचल की विविध सामाजिक समस्याओं को अपनी कहानियों के माध्यम से उजागर किया है । पहाड़ की कुछ जानी-मानी समस्याओं को इन लेखकों ने अपने-अपने ढंग से अभिव्यक्त किया है । जहां शेखर जोशी की `दाज्यू ` जैसी कहानी, रोजगार के लिए छोटे-छोटे बालकों के पलायन को सामने लाती है, तो शैलेश मटियानी की कहानी `अर्द्धांगिनी` पहाड़ में हरिजन समस्या का एक पहलू उजागर करती है ।

पंकज भी अपनी कहानियों में इन समस्याओं को उठाते हैं । उनकी कहानियों का सामाजिक फलक काफी विस्तृत है । उनकी कहानियों में पहाड़ी जीवन की समस्याएं, सामाजिक रूढ़ियां, स्थानीय समस्याएं, मैदानों की ओर पलायन, नारी शोषण तथा अन्य अनेक सामाजिक पहलू उभर कर सामने आते हैं । यद्यपि उनकी कहानियों का उद्देश्य मात्र इन समस्याओं को उठाना नहीं रहा है । ये कहानियां मानव जीवन की व्यापक और मूलभूत प्रश्नों से जुड़ी हुई होती हैं और उपर्युक्त सामाजिक समस्याएं कहानी में द्वितीयक अथवा वातावरण के यथार्थ के रूप में आती हैं । फिर भी वे समस्याएं पाठकों का ध्यान बरबस आकृष्ट कर लेती हैं । पंकज की कहानियों का निम्न शीर्षकों के अधीन सामाजिक अध्ययन करना उपयुक्त होगा ।

1. पहाड़ी जीवन की समस्याएं

पहाड़ का भौतिक परिवेश मैदान से भिन्न है । इस भौतिक परिवेश का प्रभाव वहां के मानव जीवन पर भी गहरे रूप से पड़ा है । पर्यावरण की सामान्य कठोरता ने वहां के जीवन को भी सामान्यत: अधिक कष्टसाध्य कर दिया है । सर्वप्रथम पहाड़ के भौतिक परिवेश ने, विकास की गति को अवरुद्ध कर दिया है जिससे सामान्य वस्तुओं का भी वहां अभाव पाया जाता है । बिजली की अनुपस्थिति, चिकित्सा सेवाओं का अभाव, परिवहन की समस्या, शिक्षण के लिए कठिन संघर्ष जहां विकास की गति की अवरुद्धता के परिणाम हैं, वहीं कृषि का पिछड़ापन, जंगली जानवरों का आतंक, उद्योगों का अभाव, परिणामत: रोजगार का अभाव वहां के भौतिक परिवेश का परिणाम कहा जा सकता है ।

पहाड़ी जीवन की समस्याएं पंकज बिष्ट की कहानियों में बार-बार उभर कर आती हैं । 'हल' कहानी पहाड़ी जीवन में व्याप्त निर्धनता, सुविधाओं का अभाव, रोज़गार के लिए पलायन तथा परिणामस्वरूप छोटे

बच्चों का कम उम्र में ही खेती आदि कार्यों में जुट जाने को रेखांकित करती है । यह कहानी उम्मेदसिंह की बहन भागुली के परिवार की कहानी है । उसका पति डूंगरसिंह रोज़गार की तलाश में मैदानों की ओर जाता है तो घर में हल चलाने का दायित्व छोटे से शिविया पर आ जाता है । लेकिन पहाड़ी खेती से कौन सी उपज होती । उम्मेदसिंह कहता है -`बज्जर पड़े इस पहाड़ी खेती को । कितने करतब करो और कितने ही तरह के बीज बोओ, पर ढाक के वही तीन पात। शायद ही कोई साल ऐसा होता हो, जब आराम से चार-पांच महीने का नाज निकल पाता हो । हर साल परदेश जाओ, बाल-बच्चों से दूर, लोगों की रोटी बनाओ, बर्तन भांडे मांजो, कपड़े धोओ, और फिर भी बच्चे भूखे-नंगे । धिक्कार है ऐसी जिन्दगी को । इस साली जिम्मेदारी से तो गू खाना अच्छा ।`[1]

इस प्रकार की खेती पर निर्भरता का परिणाम है, भागुली के घर की निर्धनता,जो कि प्राकृतिक आपदाओं से अपना कष्ट और बढ़ाती है -`क्या समय आ गया है, उम्मेदसिंह सोचने लगा, इस साल ऐसा सूखा पड़ गया कि सारी बरसात खेतों में धूल उड़ती रही और सब्जियां तक बाहर से मंगानी पड़ीं । और साल कुछ मिर्चियां बेच लेते थे, कुछ सब्जी हो जाती थी, इस साल मिर्ची भी नीचे की ही खरीदनी पड़ रही है । आखिर कोई करे भी तो क्या करे । जिसके एक-दो प्राणी दिल्ली लखनऊ में काम नहीं कर रहे, उनके पास तो सिवा रौ (भंवर) पड़ने के कोई रास्ता नहीं है ।`[2]

इस भयानक गरीबी का परिणाम है, असमय आया बुढ़ापा और छोटे छोटे बच्चों की मौत । स्वयं भागुली की दशा इसका जीवंत चित्रण करती है । `क्या हुआ करती थी भागुली `बोकिया` जैसी ।

---

1. पंकज बिष्ट - पंद्रह जमा पच्चीस -`हल` कहानी, पृ० 13
2. वही, पृ० 54

दो गट्ठा घास दो मील चढ़ाई पर एक सांस में ऐसे ले जाती थी जैसे कोई मछली पानी में तैर रही हो । और अब देखो, हर समय कमर बान्धे ऐसे कराहती रहती है मानो धिकुआ काटते-काटते ऊंची डाल से गिर पड़ी हो । खा गई ये साली आदमखोर जमीन, इसे जिंदा खा गई । कैसी हंसमुख थी, आज देखो किस तरह चिढ़चिढ़ाती रहती है - कभी इस बच्चे की मार तो कभी इस बच्चे की मार । कैसे हो गई होगी, ये इतनी कर्कशा और कटुटर, उसे आश्चर्य होता है, जो कभी काम से घबराती नहीं थी, वही आज अपने ही आठ-दस साल के बच्चों से ऐसे काम लेती है, जैसे `गोरखा राज` में बेगार भी नहीं ली जाती होगी ।`[1]

रोजगार के लिए घर के बड़े लोगों का पलायन, बच्चों पर काम का बोझ बढ़ा देता है । भागुली के बेटे शिविया की भी यही स्थिति हो जाती है । पिता के मैदान की ओर जाने से शिविया को कम उम्र में ही खेती की जिम्मेदारी उठानी पड़ती है, `शिविया सुबह हल लगाता था, दिन में घर के दूसरे छोटे-मोटे काम करता और रात को दो मील दूर जा कर देर तक रामलीला देखता । ठण्ड बढ़ने लगी थी । कपड़ों के नाम पर स्काउटिंग की स्कूली खाकी कमीज और पैंट के अलावा एक कई साल पुराना बाप का उतारा स्वेटर भी था जो उसके शरीर पर सारे साल ऐसे झूलता रहता था जैसे चिड़ियों को डराने के लिए बनाए गए बिजूके पर कपड़ा झूलता था । ठण्ड लगी होगी और उसने छाती पकड़ ली । ऐसे में डबल निमोनिया न होता तो और क्या होता ।`[2] शिविया को बीमारी में डाक्टर भी नसीब न हुआ । क्योंकि डाक्टर कहीं आस-पास उपलब्ध ही नहीं था । फलत: उसकी असमय ही मृत्यु हो जाती है ।

---

1. पंकज बिष्ट - पंद्रह जमा पच्चीस - पृ0 14
2. वही, पृ0 11

लेकिन पहाड़ी जीवन की विडम्बना यह है कि भागुली, इस घटना के बावजूद, अपने छोटे बेटे को `हल` लाने का काम सिखाने को कहती है । वह उम्मेदसिंह से कहती है -`ददा, इस रघुवा को सिखा देना थोड़ा-थोड़ा । अब से सीखने लोगा तो एक आद साल बाद ठीक से बैल चलाने आ जाएंगे ।`[1]

पहाड़ी जीवन की इन्हीं समस्याओं को `हिमदंश` कहानी सामने लाती है । कथावाचक शहर में पढ़ने वाला नौजवान है । वह छुट्टियों में अपने पहाड़ी गांव वापस आया है । यहीं उसका साक्षात्कार होता है पहाड़ की दारुण जिन्दगी से । चूंकि कथावाचक के पिता अब शहर में बस गए हैं, फलत: उसके पिता और काका के जीवन में मूलभूत अन्तर आ गया है । वह स्वयं अपने आप को गांव के जीवन से अलग-थलग महसूस करता है । उसकी पढ़ाई, और गांव के जीवन की वास्तविक समस्याओं से कोई सम्बन्ध नहीं । `मेरे कानों में काकी का स्वर गूंज रहा है - और कितना पढ़ेगा । लाता है सब पढ़ना बेकार हो गया । इस पढ़ने ने मुझे इन सब से अलग कर दिया है । मैं सोचता हूं, वाकई इस पढ़ाई से मैं क्या करूंगा - मिल्टन, वायरन, स्पेंसर, शैली, कीट्स, शेक्सपीयर, एलियट, शा और न जाने क्या क्या मैंने पढ़ा है । रिजल्ट आएगा और मैं मास्टर आफ आर्ट्स हो जाऊंगा । पर ये कभी क्या मेरे कुछ काम आएंगे ?`[2] वास्तव में यह कहानी बदल गए सम्बन्धों को भी रेखांकित करती है । कथावाचक कहता है,`जब आर्थिक-सांस्कृतिक संदर्भ बदल जाते हैं, तब वंश परम्परा, परिवार, कितने बेमानी हो जाते हैं ।`[3]

यह कहानी जिन पहाड़ी समस्याओं को सामने लाती है, वे हैं

---

1. पंकज बिष्ट - पंद्रह जमा पच्चीस, पृ0 18
2. वही, पृ0 48
3. वही, पृ0 49

अभाव से उत्पन्न समस्याएं । यह अभाव वैयक्तिक निर्धनता भी है, साथ ही साथ सामाजिक सुविधाओं का भी । भयानक गरीबी और उससे संघर्ष व्यक्ति को असमय ही बूढ़ा कर देता है । 'मैंने काकी को अब ध्यान से देखा। मुझे एक धक्का सा लगता है । कितनी बूढ़ी हो गई है काकी । अभी उमर क्या होगी, अंदाजा लगाया, तीस पैंतीस से ज्यादा नहीं हो सकती, लेकिन ऐसे है मानो पचास के आसपास हो ।'[1]

गांव में डाक्टरी सुविधाओं का बेहद अभाव है । काका का बेटा कुन्दन बीमार पड़ जाता है लेकिन गांव में बुखार मापने का भी कोई साधन नहीं है । कथावाचक के पूछने पर काकी कहती है -'नहीं तो, गांव में कहां थर्मामीटर धेला ।'[2]

कुन्दन की तबियत बिगड़ती जाती है । लेकिन डाक्टरी सहायता तो दूर, सामान्य आहार भी उपलब्ध नहीं रहता ।'बीमार बच्चे के लिए एक छींटा भी दूध नहीं है । याद आता है रात काका बतला रहे थे कि इस बार एक रुपए की तीन किलो घास हो गई । दस रुपए में एक बोरा आ रहाहै । गेहूं खरीदने के लिए पैसा नहीं है, अब बता घास कहां से खरीदें । वर्षा हुई नहीं, जो खेती पाती थी, वह भी सब सूख गई । अभी तो जानवर मर रहे हैं, थोड़े ही दिन की बात और है, फिर आदमी भी मरने लगेंगे ।'[3]

पहाड़ की खेती पर टिप्पणी इस कहानी में भी काका के इस कथन से मिलती है -'पर इस ज़मीन को कौन खरीदेगा । साल भर मेहनत करो, दो महीने का खाने को पूरा नहीं होता । हम तो जैसे-तैसे गुज़र कर भी

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ० 51
2. वही, पृ० 53
3. वही, पृ० 54

भी लेते हैं, पर जिनका कोई कमाने वाला न हो, उनका हाल तो ईश्वर ही जानता है ।'[1]

चूंकि गांव के आसपास डाक्टर नहीं है, अत: कुन्दन की बिगड़ती स्थिति को देखते हुए, पंडित जी की सहायता ली जाती है जो वैद्य का काम भी करते हैं । लेकिन पंडित जी अपने जजमान के यहां पूजा में व्यस्त हैं । अत: स्वयं न आकर - वहीं से कुछ दवा दे देते हैं । उस दवा से स्थिति सुधरने के बजाए और बिगड़ जाती है । तब दूर के एक दूसरे वैद्य को बुलाया जाता है । लेकिन उस वैद्य द्वारा दिए गए इंजेक्शन के आधे घंटे के भीतर ही कुन्दन की मौत हो जाती है ।

कुन्दन की मौत कथावाचक को हिला देती है । अपनी असहायता तथा निरर्थकता पर वह स्वयं सोचता है -

'सैरगाह । हूं, जैसे अमरीकी हिन्दुस्तान के आदमी रूपी कीड़े और उनकी अजीबोगरीब हरकतें देखने आते हैं, मैं भी मैदानी शहर से बाबू बना यहां दिल बहलाने, शांति पाने आ जाता हूं ।'[2]

हरिजन समस्या' को सामने लाने वाली कहानी 'लाजवाब' बाल-श्रम की ओर भी पाठक का ध्यान आकृष्ट करती है । यद्यपि दलित उत्पीड़न की समस्या पहाड़ में उतनी तीव्र नहीं है, जितनी कि मैदान में, परन्तु फिर भी पहाड़ी जीवन की सामान्य अभावग्रस्तता ने दलितों के जीवन को कुछ अधिक ही प्रभावित किया है । बच्चीराम के माध्यम से यह कहानी दलित जीवन और उसकी समस्याओं से हमारा साक्षात्कार कराती है --

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ0 54
2. वही, पृ0 60

'खानदानी लोहार है बच्चीराम । उसके पिता ने भी यही काम किया था, दादा ने भी और परदादा ने भी । पिता से ही उसने लोहारगिरी सीखी थी, यद्यपि वह चाहते थे कि बेटा पढ़ लिख जाए और कोई ऐसा काम कर ले, जिससे पूरी मेहनत के बदले पूरा पेट भी भरे । बच्चीराम को याद है कि हाड़तोड़ मेहनत के बावजूद शायद ही कोई दिन ऐसा रहा हो जिस दिन उनके परिवार का पेट भर पाया हो । पिता से उसे विरासत में लोहारगिरी ही नहीं मिली, यह आधा पेट रहने की परम्परा भी मिली । सच बात तो यह थी कि वे लोग गरीबों के लोहार थे, इसलिए और भी गरीब थे ।'[1]

यद्यपि लोहारगिरी, बच्चीराम का खानदानी पेशा था, लेकिन स्वयं उसके पिता ने भी चाहा था कि बच्चीराम पढ़ लिख कर कुछ बन जाय । उसकी इस आकांक्षा में तत्कालीन परिस्थितियों का भी प्रभाव था -

'अभी उसने होश संभाला था कि सुना देश आज़ाद हो गया है । अब हमारा शोषण बंद होगा । सब को समान अवसर मिलेंगे और हर कोई पढ़ सकेगा । गांधीजी ने पहले ही डूमों को हरिजन बना दिया था और छुआछूत कानूनी अपराध हो गया था । उसके बाद आए चुनाव । नेता लोगों ने ऐसे-ऐसे भाषण दिए कि उसके पिता ने बैलों की जोड़ी पर मुहर ही नहीं लगाई, एक अजीब आशा भी लगा दी ।'[2]

बच्चीराम को भी स्कूल भेजा जाने लगा । फीस माफ तो थी ही, साथ ही भविष्य में नौकरियों में भी आरक्षण था, इसीलिए बच्चीराम के पिता ने सोचा कि उसका बेटा भी तो कलेक्टर बन सकता है

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ0 95
2. वही, पृ0 97

लेकिन धीरे धीरे चीजें गड़बड़ाने लगीं । महंगाई बढ़ी तो उसके पिता की स्थिति डामगाने लगी ।

'अब उसे भी काम करना पड़ता था । वह स्कूल से आकर शाम को पिता का हाथ बंटाता । कभी घन चलाता तो कभी धौंकनी । ऊपर से तीन मील स्कूल जाना और तीन मील आना । नतीजा यह हुआ कि कक्षा में अक्सर वह ऊंघने लगता और थकान से घर में पढ़ नहीं पाता था ।'[1]

इसी बीच उनके क्षेत्र में मुख्यमंत्री का दौरा हुआ । उसे तब मुख्यमंत्री के जीवन संघर्ष का पता चला जिससे उसकी पढ़ने की प्रेरणा और बढ़ी । लेकिन धीरे-धीरे कक्षा पांच से आठ तक पहुंचने में उसे पांच साल लग गए ।

'आठवीं ' में आते-आते उसके पिता के लिए और अधिक गृहस्थी की गाड़ी खींच पाना मुश्किल हो गया । उनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहने लगा । दमा उन्हें लगातार सता रहा था । अक्सर उसे स्कूल से नागा कर लोहारी का छोटा-मोटा काम करना पड़ता । पहले वह आठ-दस दिन स्कूल नहीं गया । फिर एक महीना और उसके बाद स्कूल जाना बिल्कुल ही बंद हो गया । यह सब इतने स्वाभाविक ढंग से हुआ कि स्वयं इसको कभी यह बात नहीं खटकी कि उसने स्कूल जाना छोड़ दिया है ।'[2]

लेकिन स्थिति की विडम्बना यह है कि आज तीस-पैंतीस साल के बाद भी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है । वह स्वयं अपने बेटे चनिया को नहीं पढ़ा पा रहा है --

'गम है तो इस बात का कि देखो फीस माफ होने के बावजूद

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ० 98
2. वही, पृ० 102

वह अपने चनिया को नहीं पढ़ा पा रहा है । चौदह साल का चनिया घन चलाने लगा है और बहुत से छोटे-मोटे काम स्वयं ही कर लेता है। उसे अपना बचपन याद आया । उसने भी इसी उम्र में लोहारगिरी सीख ली थी और अब चनिया भी किसी दिन अचानक ही स्कूल छोड़ यह सारा भार अपने कन्धे पर ले लेगा । किशोर कन्धों पर इतना भार डालना उसे साल जाता है, पर यह सब कुछ स्वयं ही हो जाएगा, न चाहते हुए भी । ... वही सब वह अपने बच्चों को विरासत में छोड़े जा रहा है, जो उसके पिता या दादा छोड़ गए - भुखमरी, गरीबी और हाड़तोड़ मेहनत ।'[1]

चरवाहा जीवन को 'आखिरी पहर' कहानी, उसके पूरे संघर्ष आतंक एवम् जिजीविषा के साथ सामने लाती है । पहाड़ी भौगोलिक परिवेश एवम् जंगली बाघ के आतंक को कहानी बखूबी उजागर करती है । चरवाहा जीवन की यह विशिष्टता है कि उसमें व्यक्ति का जीवन जानवरों के साथ ही पूर्णतः एकाकार हो जाता है । शेष समाज से अलगाव तथा एकान्त जीवन उसमें प्रकृति के साथ संघर्ष करने की तीव्र भावना भर देता है । बाघ के कारण घनघोर जंगल में फंस गए चरवाहे की व्यथा एवम् संघर्ष कोउजागर कर 'आखिरी पहर' कहानी पहाड़ी परिवेश की इस प्रमुख विशिष्टता से पाठक का साक्षात्कार कराती है ।

पहाड़ी जीवन और शहरी जीवन के अंतर को 'मोहन राम (दास), आखिर क्या हुआ ?' कहानी सामने लाती है । साथ ही यह कहानी बाल श्रम की समस्या को उजागर करती है । मोहन, एक पहाड़ी परिवार का गरीब बालक है । अभाव की जिन्दगी उसे शहर में खींच लाती है । यहां वह एक धनी व्यापारी के घर में घरेलू नौकर का काम करने लगता है । उसी के अनुभवों के आधार पर लेखक ने शहरी और पहाड़ी जीवन के विशद अन्तराल को व्यक्त किया है ।

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ० 104

मोहन को नौकरी के लिए प्रेरित करते हुए उसके चाचा उसके सामने उसके पूरे परिवार की स्थिति को रखते हैं । 'चाचा उसे पारिवारिक दायित्व ही नहीं, पारिवारिक अर्थशास्त्र की भी सारी बारीकियां समझाने पर इस तरह तुले हुए थे, जैसे ऐन विदाई से पहले बेटियों को जितनी भी हो सकती हैं, सलाहें दे दी जाती हैं ।'ये घर तो ऐसा भी नहीं है जहां किसी चीज़ की कमी हो, टेलीविजन तो हुआ ही, वीडियो भी ठहरा । सिनेमा-हिनेमा का कोई चक्कर ही नहीं हुआ, तू समझ कि तीन सौ नहीं, तुझे पांच सौ ही मिल रहे हैं ।'[1]

यद्यपि मोहन इस समृद्ध घर में काम पाकर, एक नई दुनिया के दर्शन करता है लेकिन उसे अपने घर की याद बराबर रहती है । लेकिन वह जानता है कि यहां काम करना उसके लिए कितना अनिवार्य है -

'हां, वह खुद आया था । उसे रोटियां कम पड़ने लगी थीं । उसके कपड़े छोटे हो सीवनों में उधड़ गए थे और अब किसी भी सिलाई से जुड़ नहीं पा रहे थे । उसके पैर सख्त हो खुरों में बदल चुके थे, इसलिए जब उसकी समझ में आया था कि कहीं दूर - और वह दूरी ऐसी दूरी भी नहीं है - एक ऐसी दुनिया है जिसमें भरपेट रोटी है । रंग-बिरंगे कपड़े हैं और भी कई ऐसी चीजें हैं जो वह सोच भी नहीं सकता । हां, एक दिन वह चला आया था अपने चाचा के साथ सुबह शाम आने जाने वाली उन गाड़ियों में से एक में, जो उस भरी-पूरी दुनिया की ओर ले जाती थीं, जिसकी बातें वह दिन रात सुनता आ रहा था, एकमात्र विकल्प के तौर पर।संभवत: यही उसकी नियति थी, और कमोवेश उन सब के साथ न जाने कितनी पीढ़ियों से यही सब होता आ रहा था ।'[2]

----

1. पंकज बिष्ट - टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां, पृ0 127
2. वही, पृ0 124

मोहन जब अपने मालिक के बच्चों की दिनचर्या देखता है तो उसे स्वाभाविक ही पहाड़ के बच्चों की याद आती है । वह दोनों जीवन पद्धतियों में तुलना करता है । जहां शहर के बच्चे स्कूल से आ कर टी.वी., वीडियो, खेल आदि पर सारा समय व्यतीत करते हैं, वहीं पहाड़ के बच्चों पर बचपन से ही घर के काम का दायित्व आ जाता है ।

" वहां तो काम बहुत ठैरे । पानी लाना, डंगरों को जंगल ले जाना, घास काटना, लकड़ी लाना, कितने जो काम हुए । जो बच्चा रोना-धोना ज्यादा करता है, उसको दो चट्टाक लाने वाले हुए । अपने-आप लाइन पर समझो ।"[1]

इस प्रकार इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पंकज बिष्ट की कहानियां पहाड़ी जीवन की समस्याओं को संवेदनापूर्ण ढंग से चित्रित करने में सफल हुई हैं ।

2. सामाजिक रूढ़ियां

पहाड़ के समाज में परिवर्तन की गति धीमी रही है । परिणाम-स्वरूप कई परम्पराएं तथा रिवाज जो आधुनिक समय में बेमानी हो चुके हैं, पहाड़ी समाज में, अभी भी व्याप्त हैं । आधुनिकीकरण की लहर, पहाड़ में पहुंची, तो जरूर है, लेकिन अभी उसका प्रभाव व्यापक नहीं है । समाज अब भी परम्पराओं तथा प्राचीन विश्वासों से चिपका हुआ है ।

पंकज बिष्ट ने अपनी कहानियों में इन सामाजिक रूढ़ियों को भी उठाया है । वे अपनी कहानियों के माध्यम से इन रूढ़ियों पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं । पहाड़ी समाज में व्याप्त अंधविश्वास, लेखक को विचलित करते हैं और उनके प्रति उसका स्वर आक्रामक हो उठता है । लेखक ने कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं परोक्ष रूप से इन समस्याओं को उठाया है । सामाजिक रूढ़ियों

---

1. पंकज बिष्ट - टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां, पृ० 128

में स्त्री-पुरुष के बीच कामों का बंटवारा, जो कि रूढ़ हो चुका है, अभी भी व्याप्त है । कुछ कार्य स्त्री के लिए निषिद्ध हैं, जैसे कि खेत में हल जोतना ।

`हलं कहानी इस सामाजिक रूढ़ि को सामने लाती है । भागुली घर के सभी कार्य करती है लेकिन उसका पति रोजगार की तलाश में शहर चला गया है । अत: खेती की जिम्मेदारी उसी पर आ पड़ती है । अन्य सभी कार्य तो वह स्वयं कर सकती है, लेकिन `हलं बाटने का कार्य उस के लिए, स्त्री होने के कारण, निषिद्ध है । फलत: वह अपने छोटे बेटे को इस कार्य में लगा देती है । परिणामस्वरूप उसकी असमय ही मृत्यु हो जाती है । लेकिन सामाजिक रूढ़ियों और परिस्थितियों के दबाव के कारण उसे इसके बावजूद भी अपने सब से छोटे पुत्र को `हलं जोतने के कार्य में लगाना पड़ता है ।

पहाड़ी समाज में अंधविश्वास भी व्यापक रूप से पाए जाते हैं । विशेषकर भूत-प्रेत, जादू-मंत्र आदि का पहाड़ी समाज पर व्यापक प्रभाव है । एक कहानी में, इस प्रथा पर टिप्पणी करते हुए लेखक कहता है -`वैसे भी पहाड़ी लोग, भूत-प्रेत, झाड़-फूंक से यों ही पीड़ित रहते हैं,`[1] वस्तुत: इन अंधविश्वासों के जड़ जमाने का एक कारण है, अभाव की जिन्दगी । जहां सामान्य सुविधाएं उपलब्ध न हों, डाक्टरी सेवा भी न मिल पाए, वहां समाज की निर्भरता, अंधविश्वासों तथा सामाजिक रूढ़ियों पर बढ़ जाती है । इस प्रकार उसे कम से कम एक मानसिक सन्तोष की प्राप्ति तो होती है ।

`हिमदंश` कहानी इसी प्रकार के अंधविश्वास को सामने लाती है । चूंकि बीमार कुन्दन को डाक्टरी सहायता प्राप्त नहीं हो पाती, फलत:

---

1. पंकज बिष्ट - टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां, पृ० 67

उसके पिता `भभूत` पर विश्वास करने लगते हैं । फिर काकी कथावाचक की सही सलाह भी अपने प्रचलित विश्वास के कारण मानने से मना कर देती है ।

`मैंने पूछा, `काका कहां गए ?`

`मल क्वई, वो हैं न बमण सौरज्यू, उनसे भभूत मंतरवाने गए हैं ।`

मैंने काकी से कहा, `इसके सर में ठंडे पानी की पट्टियां रखो ।` काकी तत्काल बोली, `ना बाबा, ना । ठंड लगी हुई है । पानी लगाया तो बचेगा नहीं । चेला ये पहाड़ है, देश थोड़े ही है ।`[1] पढ़े लिखे काका जो प्राइमरी स्कूल के हेडमास्टर हैं, वह भी इस अंधविश्वास से मुक्त नहीं हैं -

`तभी सामने से काका आते दिखलाई पड़े । हाथ में मंतरी हुई भभूत की पुड़िया थी । वह बिना बोले बीमार के कमरे में चले गए और भभूत लगा कर, बाहर लौटे । बोलते तो शायद मंत्र का असर कम हो जाता ।`[2]

गांव में डाक्टर उपलब्ध नहीं है । एकमात्र वैद्य हैं पंडित जी । लेकिन वह भी दवा से अधिक महत्व पूजा-पाठ को देते हैं । वैद्यजी, मरणासन्न कुन्दन की हालत जान कर भी उसे देखने नहीं आते तथा वहीं से कुछ दवा दे देते हैं । स्वयं लेखक, इस स्थिति को देख कर तिलमिला जाता है ।

`दिल हुआ वैद्यजी की दवा उन्हीं के मुंह पर मार दूं, पर कर नहीं पाया । ऐसा आदमी क्या इलाज करेगा, जो स्वयं तन्त्र मंत्र, पूजा पाठ के आडम्बर में सर से पांव तक डूबा हो । चिकित्सा विज्ञान है, उसकी अपनी

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ0 55
2. वही, पृ. 55

एक व्यवस्था है और तरीका है, पर मुझे ये बात कहीं क्यों न समझ में आई ।`[1]

इस प्रकार उचित चिकित्सा के अभाव में और अंधविश्वासों के परिणामस्वरूप कुन्दन की मृत्यु हो जाती है । लेखक इस कहानी के माध्यम से इस प्रकार के अंधविश्वासों पर तीव्र प्रहार करता है ।

इस प्रकार `कुंजरो वा...` कहानी गांव के भोले भाले निवासियों के अंधविश्वास को सामने लाती है । गांव निवासी, एक रात चुपके से `अस्तर` के बकरे को मार कर खा जाते हैं । लेकिन अस्तर का अपने बकरे के प्रति असीम प्रेम था । वह उस बकरे को अपने बेटे के समान मानता था । जब उसे पता चलता है कि उसका बकरा गायब है तो वह उसे ढूंढने निकल पड़ता है । रात भर बकरे की याद में विलाप करता है तथा खाना पीना भी छोड़ देता है । उसकी इस स्थिति को देख कर धर्मभीरू गांव वाले आतंकित हो उठते हैं ।

` `तीन दिन से उसने कुछ नहीं खाया है । मर गया तो पाप ही नहीं लगेगा पंडित, उसकी अतृप्त आत्मा प्रेत बन कर इस बाजार को छोड़ेगी नहीं ।` गुमान सिंह की आवाज़ इतनी गंभीर और डराकनी हो गई थी कि शिवदत्त भी कांप गए । वैसे भी पहाड़ी लोग, भूत-प्रेत, झाड़-फूंक से यों ही पीड़ित रहते हैं, उस पर यह बला ।

गुमान सिंह की चुप्पी किसी अनाम आतंक की तरह बढ़ने लगी थी । शिवदत्त बेचैन हो गए थे, उन्होंने अपने डर को एक पल को झटक कर कहा,`हमने क्या किया ? जिसने किया, वह जाने । हमें किस बात का पाप लगेगा ?`[2]

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ0 58
2. वही - टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां, पृ0 67

अन्ततः उनका यही पापबोध, उनको प्रेरित करता है और वे सभी `अख्तर` के बकरे की कीमत उसे चुकाने के लिए तैयार करते हैं । यद्यपि अख्तर, उन लोगों से पैसा लेने से इन्कार कर देता है ।

3. मैदानों की ओर पलायन

पहाड़ की भौगोलिक परिस्थितियों ने वहां के जनजीवन को गहरे प्रभावित किया है । पहाड़ में कृषि की स्थिति दयनीय है तो उद्योगों का विकास असंभव ही है । फलतः रोजगार की उपलब्धता अत्यल्प है । जीवन निर्वाह के लिए अधिकांश लोगों का मैदानों की ओर पलायन, एक सामान्य प्रवृत्ति है । पलायन ने, कई अन्य सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याओं को जन्म दिया है ।

पंकज बिष्ट की अधिकांश कहानियों में `पलायन` की समस्या का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष चित्रण मिलता है । कहीं पलायन के कारणों की पड़ताल की गई है तो कहीं पलायन के दंश का चित्रण मिलता है । कहीं पलायन के बाद अपनी जड़ों से कट जाने की व्यथा है तो कहीं नए वातावरण में व्यक्ति के अलगाव बोध की स्थिति ।

`हल` कहानी का ठुंगरसिंह भी रोज़गार की तलाश में शहर जाने को अभिशप्त है क्योंकि गांव की खेती से चार पांच महीने का अनाज भी मुश्किल से पैदा हो पाता था । `ठुंगरसिंह के घर की हालत कभी अच्छी नहीं रही । `कड़ुआव` की खेती और अकेला आदमी । हर साल वह जाड़ों से पहले ही नीचे `देश` चला जाता है और फिर गेहूं की कटाई तक ही लौट पाता है ।`[1]

ठुंगरसिंह के मैदान की ओर पलायन से घर में कई तरह की समस्याएं उठ खड़ी होती हैं । `हल` जोतने जैसी जिम्मेदारी छोटे शिविया पर आ जाती है और असमय ही उसकी मृत्यु हो जाती है ।

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ० 13

लेकिन घर की परिस्थिति को देख कर शिविया का मामा सोचता है कि इस परिस्थिति में भी डूंगरसिंह घर आकर क्या करेगा ।

'अब सोचने लगा था अगर डूंगरसिंह न आए तो अच्छा हो । कुछ ही देर पहले उसे पता चला था कि चार-पांच दिन पहले ही डूंगरसिंह का मनीआर्डर आया था । उसे गए हुए भी तो कुछ ही रोज़ हुए हैं , अब पैसे कहां होंगे उस के पास । ऊपर से कच्ची नौकरी । आजकल नौकरी ढूंढना कोई आसान काम है, एम.ए., बी.ए. तो टक्कर मारते-फिरते हैं ।'[1]

'हिमदंश' कहानी भी 'पलायन' की समस्या का एक पहलू सामने लाती है । शहर में पलायन कर जाने के बाद व्यक्ति का दृष्टिकोण बदल जाता है । लेखक खुद कथावाचक है और शहर में बस चुका है, लेकिन उसके काका अभी गांव में ही रहते हैं । जब लेखक गांव वापस आता है तो उनके संबंधों में अन्तर आ जाता है । लेखक सोचता है -'मैं इनका कुछ लगता हूं । क्या उनमें से ही हूं ? जब आर्थिक, सांस्कृतिक संदर्भ बदल जाते हैं, तब वंश परम्परा, परिवार कितने बेमानी हो जाते हैं ।'[2]

लेखक को अब भी गांव और पहाड़ से प्यार है । इसीलिए वह गांव आ जाता है । लेकिन उसके मम्मी-पापा तथा बड़े भाई ने गांव आना ही छोड़ दिया है । अपने पिता का दृष्टिकोण लेखक व्यक्त करता है -'पापा कहते हैं, 'ये कवि हैं, इसलिए इसे पहाड़ अच्छे लगते हैं, पर बेटा संस्कृत में श्लोक है 'दूरत: पर्वता रम्या' । कभी नज़दीक से देखना ।' '[3]

वस्तुत: लेखक के पिता का दृष्टिकोण यथार्थवादी और व्यावहारिक है । जब उन्हें शहर में नौकरी मिली तो वहीं बस गए । कौन भला पहाड़

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ0 14
2. वही, पृ0 49
3. वही, पृ0 50

की कठिन ज़िन्दगी जीना चाहेगा । लेखक यह देख कर भी सन्न है कि उसके काका, जिन्होंने अपनी पूरी ज़िन्दगी पहाड़ पर ही गुज़ार दी, अब भी मैदान में बसने की आशा रखते हैं ।

लेकिन 'मुकाम' कहानी पलायन के दूसरे पहलू को सामने लाती है । कहानी में पिता ने अपनी ज़िन्दगी का अधिकांश हिस्सा पहाड़ में व्यतीत किया है । वह पहाड़ में ही सरकारी नौकर है। लेकिन उन के बच्चे शहर में बस गए हैं । जब तक उनकी पत्नी जीवित रही, वह पहाड़ पर ही रहे, लेकिन अचानक पत्नी की मृत्यु ने उन्हें अकेलेपन से भर दिया । इसी कारण वह शहर में अपने बच्चों के पास आ गए । लेकिन यहां का जीवन उन के लिए असहज था । 'प्रारम्भ में बच्चों के बीच उन्हें काफी शांति मिली थी, पर धीरे धीरे उनकी समझ में आ गया कि नहीं, इस दुनिया में वह आरोपित है या कह लीजिए अतिरिक्त हैं । यह एक अलग ही संसार था । उनके लिए बिलकुल अपरिचित और अनजान, जहां हर व्यक्ति की अपनी एक दुनिया थी ।'[1]

वह इस जीवन में सहज होने की भरसक कोशिश करते हैं । अपने को बहलाने के लिए तरह-तरह के कार्य करते हैं । लेकिन अन्ततः वह इसमें सफल नहीं हो पाते ।'और उनके लिए यह भी स्पष्ट हो रहा था कि ज़िंदगी को दूसरों के बहाने नहीं काटा जा सकता । इसलिए वह अंततः लौट रहे थे, अपनी दुनिया को जहां उनका परिवार है, जिसमें मोती है, जिसमें नींबू और कटहल के पेड़ हैं । ... मोती के साथ उन्होंने अत्याचार ही तो किया है । वह उनके बगैर खाना भी नहीं खाता था और वह उसे छोड़ कर चले आए थे । वह विकल हो उठे । वहीं, अब मैं आ रहा हूं । मैंने सब को छोड़ दिया है । मेरा वहां कोई नहीं है ।'[2]

---

1. पंकज बिष्ट - टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां, पृ० 39
2. वही, पृ० 43

'मोहन राम (दास), आखिर क्या हुआ ?' का मोहन नौकरी की तलाश में बचपन में ही शहर आ जाता है । उसके पलायन का कारण है, उसके घर की गरीबी । पलायन का पूरा समाज शास्त्र निम्न उद्धरण से स्पष्ट हो उठता है --

'अरे, पहाड़ी तो बड़े निर्दयी होते हैं ।' बीवी जी ने फैसले वाले अन्दाज में कहा । फिर मोहन की ओर देख कर बोलीं, 'छोटे छोटे बच्चों को देश-विदेश पैसा कमाने भेज देते हैं ।'

मोहन के पास यद्यपि इस बात का कोई जवाब नहीं था, पर उसे यह बात ठीक नलगी । उसके मां-बाप उतने अच्छे चाहे न हों, जितने टीटू और टिंकी के हैं, पर किसी भी रूप में वे निर्दयी नहीं हैं, वह जानता था । कोई नहीं चाहता था, वह नौकरी करने जाए, इस पर भी मां-बाप को उसे भेजना पड़ा था । वह बड़ा हो गया था । मजबूरी समझने लगा था। उसका दिल हुआ, कह दे - नहीं-नहीं, मां-बाप ने नहीं भेजा, मैं खुद आया हूं ।'[1]

4. समाज में नारी की स्थिति

पहाड़ में नारी की स्थिति अधिक कष्टसाध्य है । एक ओर वह सामाजिक रूढ़ियों की शिकार है, उसे समाज में दूसरा दर्जा प्राप्त है तो दूसरी ओर पहाड़ की कठिन भौगोलिक परिस्थितियों के कारण शारीरिक श्रम भी भयावह है । इस स्थिति में अगर घर का वयस्क पुरुष, नौकरी के लिए बाहर गया हो तो घर की सभी ज़िम्मेदारियां उसी के कन्धे पर आ जाती हैं । इस प्रकार कहा जा सकता है कि पहाड़ में नारी की स्थिति, जहां नारी होने के कारण, परम्परागत रूप से निम्न है, वहीं पुरुष की जिम्मेदारियां भी उठाने के कारण अधिक कष्टसाध्य भी । लेकिन इसी का

---

1. पंकट बिष्ट - टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां, पृ0 129

एक सकारात्मक परिणाम यह भी है कि नारी जीवन में लगाए जाने वाले विभिन्न बन्धन, पहाड़ी समाज में ढीले पड़ गए हैं । सामान्यत: उसकी स्वतन्त्रता पर बहुत अधिक हस्तक्षेप संभव नहीं होता, क्योंकि पारिवारिक दायित्वपूर्ति के लिए घर से बाहर निकलना उसके लिए आवश्यक है । साथ ही, वयस्क पुरुष के घर न रहने से, अधिकांश फैसले भी उसे स्वयं लेने का अधिकार प्राप्त हो जाता है । इस सब के उपरान्त भी उसकी स्थिति का समाज द्वारा शोषण किया जाता है ।

नारी की स्थिति पर भी पंकज बिष्ट ने अपनी कहानियों में लेखनी चलाई है । यद्यपि नारी को केन्द्र में रख कर उन्होंने कोई कहानी नहीं लिखी है, तथापि नारी की मार्मिक स्थिति का चित्रण उनकी अनेक कहानियों में मिलता है ।

`हल` कहानी यद्यपि अनेक समस्याओं को उठाती है, लेकिन कहानी के केन्द्र में `भागुली` का ही चरित्र है । वह एक दृष्टि से, समस्त पहाड़ी स्त्री की प्रतीक है । उसका पति नौकरी हेतु `देश` चला गया है और घर की जिम्मेदारी उसी के कन्धे पर आ पड़ी है । उसकी कई संतानें काल कवलित हो चुकी हैं । फलस्वरूप वह चिड़चिड़ी और कर्कशा हो गई है । यद्यपि उसके एक छोटे बेटे का निधन अभी-अभी हुआ है, फिर भी उसे खेत की ही चिन्ता लगी है -`भागुली कुछ देर चुप रही । फिर बोली, `वो आ ही जाएंगे एक आद दिन में, तार तो मिल ही गया होगा ? अभी तो आधे खेत बाकी है ।`[1]

पहाड़ की कठिन ज़िन्दगी ने उसे एक प्रकार से संवेदनाहीन बना दिया है । पुत्र की मृत्यु भी उसके लिए एक सामान्य घटना बन जाती है ।

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ० 17

'भागुली की आंखें भर आई थीं । शायद खेतों की याद आते ही शिविया उसके दिमाग पर छा गया था । पर उसने जल्दी ही स्वयं को नियंत्रित कर लिया और कहने लगी, 'यह तो हर साल का रोना है दाज्यू । अब तुम भी अपना घर बार छोड़ कर कब तक लो रहोगे ।'[1]

'हिमदंश' कहानी की काकी भी असमय ही बुढ़ापे का शिकार हो गई है । डाक्टरी सहायता न मिलने के कारण बेटे की मृत्यु ने काकी को अन्दर से तोड़ दिया है । वस्तुत: काकी की आखें सदा ही नम रहती हैं ।

'रोता कौन था, कह नहीं सकता । काकी को मैंने जब भी देखा, उन की आखें लाल अवश्य रहती थीं, पर स्वर सदा ही गायब रहता । लगता है शायद नदी ही रोती हो ।'[2]

इसी प्रकार 'मुकाम' कहानी में पार्वती अपनी ममता एक छोटे से पिल्ले पर लुटाती है । क्योंकि उसके स्वयं के बच्चे 'देश' को पलायन कर गए हैं ।

इस प्रकार पंकज बिष्ट की कहानियों में सशक्त नारी चरित्रों की उपस्थिति मिलती है। ये नारी चरित्र पहाड़ में नारी की स्थिति, उसके संघर्ष, उसकी व्यथा तथा उसकी जिजीविषा को पाठक में सामने साकार कर देते हैं ।

5. स्थानीय समस्याएं

आधुनिक संस्कृति के प्रसार के साथ ही कुछ अन्य समस्याएं भी पहाड़ी समाज में उत्पन्न हुई हैं । पर्यावरण का संकट और जंगलों, नदी-

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ0 17
2. वही, पृ0 61

नालों का व्यापक विनाश इनमें प्रमुख है । साथ ही बढ़ता हुआ उपभोक्तावाद तथा साम्प्रदायिकता जैसी समस्याएं भी अपना सर उठाने लगी हैं ।

`हिमदंश` कहानी पर्यावरण की समस्या पर प्रकाश डालती है । जो पहाड़ अपनी प्राकृतिक सुन्दरता के लिए विख्यात था, जहां जंगलों की प्रचुरता थी, नदी नालों का स्वच्छ जल तथा प्रकृति की सुन्दरता सैलानियों के आकर्षण का केन्द्र थी, अब आधुनिक अनियोजित और अंधी विकास की दौड़ का शिकार बन रहे हैं । पहाड़ की प्राकृतिक सम्पदा की लूट-खसोट मची है । स्थिति का चित्रण लेखक इन शब्दों में करता है -

`मैंने नज़र उठा कर नदी के उस ओर डाली । सामने परथला था, छोटे-छोटे दुमंज़िला मकान और लाल चमकती मिट्टी, इस गांव की मिट्टी कुछ विशेष ही लाल है । हरियाली का नाम नहीं । दूर-दूर पर कुछ और गांव चमक रहे थे । सीढ़ीनुमा खेत । अगर पेंटिंग का इरादा हो तो जोरदार लैंडस्केप बने । अचानक मुझे लगता है सामने का पहाड़ बेहद नंगा है, पत्थरों की औघड़ दीवार से जगह-जगह घेराबन्दी की है। पेड़ों के नाम पर खिल्ली के कनाट प्लेस में ज़्यादा पेड़ होंगे । मुझे सामने के नंगे पहाड़ से वितृष्णा-सी होने लगी - मानों कोई पागल आदमी कपड़े उतारे सामने आ खड़ा हुआ हो ।`[1]

लेकिन इस सब का कारण क्या है ? लेखक इसकी तलाश भी कहानी में करता है --

`मैंने जब कल काका से पूछा था, `ये पहाड़ नंगे क्यों हैं ? पेड़ कहां गए, क्या कभी थे ही नहीं ?` तब वह हंसे थे, एक विद्रूप सी हंसी, `शिकार फैला रहे हैं ।`

`क्यों ?` मैं समझ नहीं पाया था ।

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ० 52

बोले, `कागज बनाने के एक कारखाने के पास इनको काट ले जाने का परमिट था, सो वे ले गए । आज हम तुम पर कैसे गर्व कर सकते हैं । इन्हीं पेड़ों के कारण तो ?`[1]

वस्तुत: पहाड़ की प्रकृति से व्यापक खिलवाड़ ने, पूरी परिस्थितिकी को गड़बड़ा दिया है । `हिमदंश` कहानी के काका की टिप्पणी, इस सम्बन्ध में सटीक है -`अब वर्षा समय पर नहीं होती, जलाने को लकड़ी नहीं मिलती, डंगरों को घास नहीं मिलती, बाढ़ आती है । जानते हो, हमारे यहां के खेत, जो सब से उपजाऊ थे, नदी बहा ले गई ।` ... पेड़ बादल खींचते हैं, वर्षा लाते हैं और नदी में बाढ़ नहीं आती । पेड़ ज़िन्दगी है ।`[2]

वस्तुत: देखा जाय तो पहाड़ की सम्पदा की लूट खसोट के लिए एक पूरा तन्त्र विकसित हो चुका है । जिसे पहाड़ से कोई मतलब नहीं है, उसे केवल अपने मुनाफे से सम्बन्ध है -`उन्होंने बतलाया था जंगल कैसे काटे जा रहे हैं, ठेकेदार क्या बदमाशी करते हैं । पेड़ कटने चाहिएं, पर छोटे पेड़ों को नहीं काटना चाहिए ना, कटे पेड़ों की जगह नए पेड़ लगने चाहिएं... ।`[3]

पेड़ कटने का एक परिणाम है, पानी के स्रोतों का सूख जाना । फलत: पानी की समस्या, पहाड़ की एक विकट समस्या बन गई है -

`मुझे अपने गांव का नौला याद आ गया, जो गांव से पौने मील नीचे है, जहां से गांव भर को बस पीने को पानी मिल जाता है । औरतों का एक बहुत बड़ा काम पौन मील की चढ़ाई पर पानी ढोकर लाना है ।`[4]

----

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ0 52
2. वही, पृ0 53
3. वही, पृ0 53
4. वही, पृ0 56

पहाड़ में विकास का अभाव है । लेकिन आधुनिक समय में विकास की जो योजनाएं बन रही हैं, वे भी पहाड़ की सामाजिक-भौतिक पर्यावरण को देखते हुए उचित नहीं ठहराई जा सकती ।

'मैं सोचने लगा, पहाड़ पर बिजली कितनी खूबसूरत लगती है, जैसे जगह-जगह दिए जला दिए गए हों । जब सब गांवों में बिजली आ जाएगी तो कितना खूबसूरत होगा वह दृश्य । मेरे दिमाग में नैनीताल कौंधा । पर बिजली ही क्या हर समस्या का समाधान है ? पहले तो लोगों के पास इतना पैसा ही नहीं है कि वह अपने घरों में बिजली लगवा सकें, अगर जोड़ तोड़ कर लगवा भी लीं तो क्या वह इसका कुछ उपयोग कर पाएंगे ? हां, अगर कभी बहुत भूखे हों तो बिजली से चिपक कर आत्महत्या आसानी से कर सकते हैं ।'[1]

विकास की इसी समस्या को 'लाजवाब' कहानी में भी उठाया गया है । सरकारी घोषणाएं और वास्तविक विकास के विरोधाभास को यह कहानी बखूबी उजागर करती है । घोषणाएं तथा वादे तो बहुत किए जाते हैं, लेकिन वास्तव में विकास और भी पीछे चला जाता है -

'विकास की कैसी-कैसी योजनाएं नहीं चलीं, पटवारी, पेशकार, बी.डी.ओ., ए.डी.ओ., सहकारी बैंक, रासायनिक खाद न जाने कौन कौन और क्या-क्या नहीं आया । कभी कहा गया गांव में गूल आने वाली है, कभी सुना गांव में पीने के पानी का नल लगने वाला है, घर-घर पानी आ जाएगा । पर सब कुछ वहीं का वहीं रहा ।'[2]

इस विकास की हवा का शिकार गुमानसिंह भी बनता है । विकास का यह चक्र ही ऐसा है कि भोले-भाले व्यक्ति को इसकी चपेट में आना ही पड़ता है । 'कैसी बातें चली थीं तब - फलों के बागों की बातें ।

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ० 60
2. वही, पृ० 85

विकास के लोगों ने कहना शुरू किया था, पहाड़ी ज़मीन खेती लायक नहीं है, यहां बाग लगने चाहिएं - खुमानी, सेब, आड़ू, नाशपाती और भी न जाने क्या-क्या । आ गया कुछ लोगों की बातों में । इस गुमानसिंह ने, जिस के दो भाई दिल्ली में हैं, एक लम्बे-चौड़े टुकड़े पर `विकास का ऋण` लेकर कमर-कमर गड्ढे खोद पेड़ लगाने शुरू किए । पहाड़ी ज़मीन, एक-एक गड्ढा खोदने में एक-एक दिन लगा और चार पांच सौ पेड़ रोपे गए । बीच-बीच में विकास के अधिकारी आते, सलाह देते, कभी कोई खाद बताते, कभी कोई दवा बताते और चले जाते ।`[1]

लेकिन पर्याप्त पानी न मिलने से तथा वर्षा भी न होने से, पेड़ खाद के प्रभाव से जल गए । गुमानसिंह का बाग का सपना धरा का धरा रह गया और वह ऋण भी न चुका पाया । उसी चक्कर में उसे एक माह की जेल की सजा भी हो गई ।

पहाड़ी समाज की एक विशेषता है कि यह अभी भी साम्प्रदायिकता के ज़हर से अछूता है । लेकिन धीरे-धीरे यहां भी साम्प्रदायिकता के कीटाणु अपना प्रभाव फैला रहे हैं । इसका मुख्य कारण है - मैदानी सभ्यता, संस्कृति से बढ़ता सम्पर्क और चुनावी राजनीति ।

साम्प्रदायिकता के इस प्रारम्भिक फैलाव को `कुंजरो वा...` कहानी मार्मिक रूप से हमारे सामने लाती है । `अख्तर` एक पहाड़ी कस्बे में रहने वाला मुस्लिम घोड़िया है जो वर्षों से वहां के निवासियों के साथ घुल-मिल कर रह रहा है । पर धीरे-धीरे माहौल बदल रहा था । इसी कारण एक अन्य मुसलमान दर्जी सुलेमान एक दिन अचानक वह कस्बा छोड़कर, अपने शहर लौट जाता है । जाने से पहले वह अख्तर से कहता है -`मियां, ये पहाड़ी अब वे पहाड़ी नहीं रह गए हैं । इस जंगल में कुछ हो गया तो घर-वालों को कई बरस तो पता भी नहीं चलेगा ।`[2]

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ० 96
2. पंकज बिष्ट - टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां, पृ० 61

वह आगे कहता है -`किसी का भरोसा नहीं रहा है । मैं नहीं कहता, लोग अच्छे नहीं थे । जब थे, तब थे । ये सुबह शाम की मीटिंगें, ये डंडे, ये त्रिशूल, ये खुरपियां अचानक क्यों निकल आई हैं ? कुछ बता सकते हो ? आखिर किसके लिए हैं ये ? यहां है कौन, तुम्हारे और मेरे सिवा ?`[1]

इसी बढ़ती साम्प्रदायिक घृणा का परिणाम होता है, अस्तर के बकरे `मुन्ना` का मार दिया जाना । वह `मुन्ना` को अपने बेटे की भांति पालता था । लेकिन अंतत: अस्तर का मार्मिक विलाप, कस्बे के निवासियों का भी हृदय परिवर्तन कर देता है ।

इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंकज बिष्ट ने अपनी कहानियों में पहाड़ के सामाजिक जीवन के विविध पक्षों को चित्रित किया है । पहाड़ी समाज की विभिन्न समस्याएं, उनकी कहानियों में आ कर पाठक के मस्तिष्क में अपना अमिट प्रभाव छोड़ती हैं ।

शहरी पृष्ठभूमि की कहानियों में सामाजिक चेतना

यद्यपि पंकज ने शहरी पृष्ठभूमि पर आधारित अनेक कहानियां लिखी हैं, परन्तु उन कहानियों में वह विविधता दृष्टिगोचर नहीं होती है जो उन की पहाड़ी पृष्ठभूमि की कहानियों में है । शहरी पृष्ठभूमि की कहानियां मुख्यत: मध्यवर्गीय जीवन को आधार बना कर लिखी गई हैं तथा उन में शहरी सामाजिक जीवन का गौण रूप से ही चित्रण हुआ है । फिर भी स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, व्यक्ति का अलगाव, बढ़ता उपभोक्तावाद, सूचना तन्त्र का बढ़ता प्रभाव तथा राजनीति के सामाजिक पहलू को लेकर लिखी उनकी कहानियां काफी सशक्त हैं ।

---

1. पंकज बिष्ट - टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां, पृ० 61

स्त्री पुरुष सम्बन्धों को आधार बना कर पंकज ने कई कहानियां लिखी हैं । `कीचड़`, `प्रतिचक्र`, `वेल`, `होमवर्क `, `खून`, `ऐसा तो नहीं होगा...`, `उस गोलार्द्ध में ` आदि कहानियां इसी कोटि की हैं । इन कहानियों में पंकज ने प्रेम के विभिन्न मनोभावों का चित्रण किया है। `ऐसा तो नहीं होगा...`।कहानी प्रेमी-प्रेमिका के मध्य उपजे शंका, अविश्वास और पुन: प्रेम को व्यक्त करती है । बदलती स्थितियों में दोनों के मध्य बदलते मनोभावों को लेखक ने कहानी का विषय बनाया है । इसी भांति `वेल` कहानी भी साथ-साथ काम करने वाले स्त्री-पुरुष के मध्य विकसित होते भावात्मक संबंधों को चित्रित करती है ।

`कीचड़`, `होमवर्क `, `उस गोलार्द्ध में ...` कहानियां तीन विभिन्न पृष्ठभूमियों में पति और पत्नी के सम्बन्धों की पड़ताल करती हैं । `कीचड़` कहानी आर्थिक अभाव में डूबे निम्न वर्ग के दम्पत्ति की कहानी है, जिसमें अर्थोपार्जन के लिए स्त्री देह व्यापार करती है और उसके पति की भी इसमें सहमति है । `होमवर्क `कहानी एक मध्यवर्गीय परिवार के पति और पत्नी के मध्य 'मौन प्रेम' की कहानी है । पत्नी अनपढ़ है और पति द्वारा लगातार उलाहना दिए जाने के उपरान्त भी पढ़ना-लिखना नहीं सीखती । लेकिन वही पत्नी, अपने पति के बीमार होने पर, उन्हीं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चुपचाप पढ़ना सीख लेती है ।

`उस गोलार्द्ध में ...` उच्च मध्यवर्गीय परिवार में पति-पत्नी के मध्य तनाव और उसके परिणामस्वरूप उनके बीच तलाक को चित्रित करती है । लेखक ने संवेदनापूर्ण ढंग से दोनों पक्षों को सामने रखा है । वस्तुत: बढ़ता हुआ व्यक्तिवाद ही सम्पूर्ण तनाव का कारण है और बाहर से कठोर प्रतीत होने वाले पिता के भीतर भी अपनी पुत्र के प्रति गहरी ममता है ।

शहरी जीवन में बढ़ते अलगावबोध का चित्रण भीपंकज की कहानियों से हुआ है । `फर्क ` कहानी इसे भली भांति उजागर करती है ।

कहानी का पढ़ा लिखा नायक अपनी नित्य की दिनचर्या से ऊब चुका है । 'मैं अपना ध्यान उधर से हटाने के लिए सामने देखने लगता हूं उन बड़ी बड़ी अजनबी बिल्डिंगों को, जिन के इतने करीब से मैं रोज गुजरता हूं । सच कहूं तो इस इलाके में मेरा मन कभी नहीं लगता । कभी कोई चीज़ अपनी सी नहीं लगती ।'[1]

इस प्रकार का अलगाववबोध, उसमें मानवीय मूल्यों के प्रति अनास्था पैदा करता है । वह जड़ एवम् संवेदना-शून्य होता जाता है । 'फर्क' कहानी का उपर्युक्त कथानायक स्वयं स्वीकार करता है —

'जब पढ़ता था - जी हां, पढ़ा है मैंने हायर सेकेंडरी तक - औरतों की काफी इज्ज़त करता था । 'लेडीस फर्स्ट' का बाकायदा पालन करता था, पर जब से केवल औरतों की सेवा करता हूं, अजब सा हो गया हूं । घृणा तो नहीं कहनी चाहिए, एक तटस्थता या यों कहिए - कुछ चिढ़ का सा भाव बना रहता है । कभी-कभी अपने इस व्यवहार पर अफसोस भी होता है और अक्सर सोचता भी हूं, मैं धीरे-धीरे ऐसा निर्दयी और बेशर्म कैसे हो गया हूं ?'[2]

'आवेदन करो' कहानी भी बेरोज़गार युवक में पैदा होते अलगाव बोध का चित्रण करने में सफल रही है ।

आधुनिक समय की एक प्रमुख समस्या है, उपभोक्तावाद तथा सूचना तन्त्र का जबरदस्त आक्रमण । 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते' कहानी हमारे समय के इस सत्य को मार्मिक ढंग से सामने लाती है । सामाजिक दबाव के कारण एक मामूली क्लर्क पिता, किश्तों में टी. वी. खरीदता है तथा स्वयं अपना इलाज न करवा कर टी. वी. की किश्तें भरता है ।

---

1. पंकज बिष्ट - पंद्रह जमा पच्चीस, पृ० 65
2. वही, पृ० 63

परिणामस्वरूप, एक दिन टी.वी. देखते हुए ही उसकी मौत हो जाती है, जबकि उसी समय टी. वी. में भयानक विज्ञापनबाजी चल रही होती है । कहानी प्रतीकात्मक ढंग से आज के समय पर टिप्पणी भी करती है । अरुण कुमार लिखते हैं -'कहानी के शीर्षक का ध्वन्यार्थ संभवत: यह भी है कि अब अबोध और संवेदनशील बच्चे ही गवाह हो सकते हैं, क्योंकि अधकचरी पूंजीवादी उपभोक्ता संस्कृति से आप्लावित होती जा रही आधुनिक सभ्यता में सज्ञान और वयस्क हो जाने का अर्थ है उत्तप्त आकांक्षा से भरी अंधी और संवेदनहीन दौड़ में शामिल हो जाना ।'[1]

'शबरी शर्मा बीमार हैं...' कहानी महिलाओं का राजनीति में किए जाने वाले शोषण का पर्दाफाश करती है । शबरी शर्मा एक संभ्रांत घर की महिला हैं, लेकिन राजनीतिक नेताओं के सम्पर्क में आने के कारण, उनकी महत्वाकांक्षा जागती है तथा वह विभिन्न उपायों से राजनीतिक सफलता के कई सोपान चढ़ जाती है, लेकिन इस प्रक्रिया में उनके साथ होने वाले शोषण का पता उन्हें तब चलता है, जब वह घातक यौन रोग का शिकार हो जाती है तथा सामाजिक रूप से भी बदनाम हो जाती है । उनकी सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती है ।

'समारोह', 'फर्क', 'दुर्गंध ' आदि कहानियां, समाज में व्याप्त अमीरी और गरीबी की दो दुनियाओं का अन्तर सामने लाती हैं । दोनों वर्गों के जीवन मूल्य तथा आदर्श भी नितान्त भिन्न हैं । लेखक ने प्रतीकात्मक तथा स्वप्न शैली का प्रयोग कर, इन दो दुनियाओं का अन्तर स्पष्ट किया है ।

'दुर्गंध ' कहानी का डाक्टर यद्यपि देश की गरीबी और गरीबों की दारुण स्थिति से परिचित है तथापि पूरी समस्या के प्रति उसका

---

1. अरुण कुमार - बच्चे गवाह नहीं हो सकते ? (साक्षात्कार - अप्रैल-जून, 87, पृ० 131)

दृष्टिकोण, गरीबों के प्रति अमीरों के दृष्टिकोण को सामने लाता है - 'डाक्टर को यह सब बातें पता हैं । किस डाक्टर को नहीं पता ? उसने पढ़ा है यह सब या कहिए उसे पढ़ना पड़ा है । पर उसकी रुचि पी. एस. एम. (निरोधक और सामाजिक चिकित्सा) में कभी नहीं रही है । पालिटिक्स, डाक्टर का काम नहीं है । भुखमरी से कुपोषण, और कुपोषण से विभिन्न बीमारियां होती हैं, बल्कि भुखमरी ही सबसे बड़ी बीमारी है, उसे मालूम है, पर क्रांति उसका धंधा नहीं है ।'[1]

'क्या कहना है जटायु...' आज के शहरी जीवन में साम्प्रदायिकता के बढ़ते प्रभाव तथा उसके आतंक का चित्रण करती है । अफवाह, झूठी प्रतिष्ठा, मिथ्या चेतना किस प्रकार साम्प्रदायिकता को बढ़ाते हैं, इसका लेखक ने कहानी में प्रभावी ढंग से चित्रण किया है । लेकिन इसी वातावरण में मानवीय संवेदना व जिजीविषा किस प्रकार अपना असर दिखाती है, यह इस कहानी के कथानायक के उदाहरण से स्पष्ट होता है । वह अपनी जान पर खेल कर 'नसरीन' नामक एक लड़की को दंगाइयों की चपेट से बचाता है और नसरीन का बयान दंगाइयों को भी स्तब्ध कर देता है ।

'सोसल' और 'कवायद' कहानियां राजनीतिक आतंक को सामने लाती हैं । वस्तुत: ये कहानियां, आपात्काल के दौरान लिखी गई हैं । प्रतीकात्मक ढंग से ये कहानियां तत्कालीन राजनीतिक स्थिति को प्रभावी ढंग से स्पष्ट करती हैं ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पंकज बिष्ट की कहानियों में सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का चित्रण हुआ है । लेखक ने पहाड़ी पृष्ठभूमि और शहरी पृष्ठभूमि की कहानियों में समाज की विभिन्न समस्याओं को उठाया है । इन कहानियों के माध्यम से पाठक इन समस्याओं से संवेदना-पूर्ण ढंग से साक्षात्कार करता है तथा उन्हें समझने में उसे एक नई अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है ।

---

1. पंकज बिष्ट - टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां, पृ0 17

अध्याय - 4

पंकज बिष्ट की कहानियों का सांस्कृतिक अध्ययन

पंकज बिष्ट की कहानियों का सांस्कृतिक अध्ययन

'अब नई संस्कृति मानव जीवन से नहीं उपजेगी, अब वह निर्धारित होगी सोप-आपेराओं से, सिटकाम से, विज्ञापनों से और टी.वी. व फिल्मों के अन्य कार्यक्रमों से, जो इनके बनाने वालों या स्पांसरों के दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करेगा या उस वर्ग की मानसिकता और मूल्यों को ही हम पर नहीं थोपेगा, जो इन्हें नियंत्रित करते हैं, बल्कि हमें वह सब देखने और सोचने पर भी मजबूर करेगा जो वह चाहता है यानि जो उसके लिए हितकर है। टी.वी. का सर्वव्यापी और सर्वग्राही दानव हमें चिंतन, क्षमता से रहित, सतही संस्कारविहीन दर्शक में बदल डालेगा और इसमें ज्यादा समय नहीं लगने वाला है, क्योंकि हमारी स्थितियां इन सब के अनुकूल हैं। यूनानियों, तुर्कों और मुगलों के आक्रमण को, एक हद तक अंग्रेजों को भी पचा जाने वाली संस्कृति और समाज पिछले तीस चालीस सालों में अपने मूल्यों, परम्पराओं और संस्कृति की शक्ति और ऊर्जा को कैसे यकायक खो चुका है, वह इस बात का प्रमाण है कि जो काम तलवार नहीं कर पाई, तकनालाजी ने बिना किसी प्रयत्न के कर दिखाया है।'[1]

उपर्युक्त लम्बा उद्धरण पंकज बिष्ट के कहानी संग्रह 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते' की भूमिका से लिया गया है। यह स्पष्ट करता है कि पंकज बिष्ट सांस्कृतिक प्रश्नों के प्रति संवेदनशील कथाकार हैं तथा हमारे सांस्कृतिक जगत पर हो रहे अधुनातन हमलों के प्रति पूरी तरह सजग हैं।

पंकज बिष्ट ने अपनी कहानियों में जिस यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है, उस यथार्थ का एक महत्वपूर्ण पहलू है - हमारा सांस्कृतिक परिवेश। चूंकि किसी भी रचना के मूल में जो चेतना प्रवाहमान रहती है, वह वस्तुतः सांस्कृतिक चेतना ही होती है। रचना प्रक्रिया से लेकर, कृति के पाठ एवं

---

1. पंकज बिष्ट - बच्चे गवाह नहीं हो सकते, पृ० 11

आस्वाद तक के निर्धारण में यह चेतना नियामक होती है । रचना अपने संपूर्ण अर्थ में स्वांत: सुखाय नहीं होती । जब कोई साहित्यकार सृजन करता है, तो वह वस्तुत: अभीष्ट पाठक समुदाय की `संभ्यता समीक्षा` कर रहा होता है । हम कह सकते हैं कि पंकज बिष्ट की कहानियां उनकी सांस्कृतिक समझ का ही प्रतिबिम्बन हैं ।

यद्यपि रीति रिवाज, परम्परा, मेले-त्यौहार, कला-साहित्य, सांस्कृतिक चेतना के महत्वपूर्ण अवयव हैं, लेकिन सांस्कृतिक अध्ययन को मात्र इन्हीं शीर्षक में उपघटित करना अपर्याप्त होगा । वस्तुत: संस्कृति, एक समग्र जीवन पद्धति है जिसमें सहयोग और तनाव, लगातार बना रहता है ।

प्रस्तुत अध्ययन में हम ने पंकज बिष्ट की कहानियों का इसी रूप में सांस्कृतिक अध्ययन किया है । कहना न होगा कि सांस्कृतिक अध्ययन में भी पहाड़ी पृष्ठभूमि की कहानियों को ही प्राथमिकता दी गई है । इसका कारण मात्र यही है कि पहाड़ी पृष्ठभूमि की कहानियों में सांस्कृतिक जगत के आयामों का विस्तार, महानगरीय पृष्ठभूमि की कहानियों से अधिक है ।

पहाड़ी पृष्ठभूमि की कहानियों में सांस्कृतिक चेतना

पंकज बिष्ट ने पहाड़ी समाज को, उसके पूरे सांस्कृतिक परिवेश के साथ, अपनी कहानियों में उकेरा है । यद्यपि कहानियों में कहीं-कहीं सूक्ष्म ब्यौरों का अभाव मिलता है, तथापि ये कहानियां पहाड़ी समाज की पूरी जीवन शैली को उसकी समग्रता के साथ चित्रित करने में सफल रही हैं ।

`हल` कहानी पहाड़ी श्रमजीवी और कृषक संस्कृति को सामने लाती है । यह कृषक संस्कृति आधुनिक मूल्यों तथा आर्थिक कारणों के कारण लगातार जर्जर हो रही है । परिणामस्वरूप पहाड़ी कृषक समाज में किसान परिवार अत्यधिक दारुण स्थिति को प्राप्त हो चुका है । भागुली का पति रोजगार की तलाश में देश को पलायन कर चुका है, क्योंकि खेती से पर्याप्त आय नहीं है । पति के देश चले जाने से घर में हल बाहने की

समस्या है । चूंकि पहाड़ी संस्कृति में स्त्री समस्त कार्य कर सकती है पर हल वाहना उसके लिए प्रतिबंधित है । फलत: यह जिम्मेदारी उस के बेटे शिविया पर आ जाती है ।`शिविया` पर कम उम्र में ही यह बोझ पड़ जाने से उसकी असमय ही मृत्यु हो जाती है । लेकिन स्थिति की विडम्बना है कि भागुली अपने छोटे बेटे रघुवा को, पुन: हल बाहने के लिए तैयार करती है ।

कहानी पहाड़ी संस्कृति के अन्य विविध पक्षों को भी सामने लाती है । जैसे - घर में किसी के बीमार होने पर गांव के सभी लोगों का आ कर आंगन में बैठना, हल बाहने के लिए सुबह तड़के ही निकल जाना, हल बाहने में एक निश्चित आवाज के स थ कार्य करना, जैसे शिविया का हल जोतते हुए, `रौ, रौ रे सैरा रौ । रौ रे चनिया, रौ ।`[1] आदि कहना ।

पहाड़ी संस्कृति की विशेषता है अतिथि का विशेष आदर सत्कार । भागुली के घर की स्थिति अच्छी नहीं है, फिर भी उम्मेदसिंह का यथोचित सम्मान किया जाता है -

`कहां जा रहा हू तू ?` उम्मेदसिंह ने पूछा ।

`घट पिसाने । अभी आता हूं ।`

`घट । इस समय । बीड़ी तो लानी है, पर तू लौटेगा कब ।` दो मील जाना और आना, फिर पहाड़ी पनचक्कियां, जो घंटे भर में पांच किलो अनाज न पीसें ।` अरे नहीं, इस समय नहीं जाना है घट-वट । आज की रोटी हो जाएगी या नहीं ? नहीं तो किसी से ले ले, कल सुबह चले जाना ?`

`है तो पर...` वह कुछ रुका ।

`पर क्या ?`

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ0 12

'कुछ नहीं मंडुवा है। इजा का कहना है कि... ।'

'नहीं, नहीं, ठीक है । मंडुवा है तो क्या हुआ ? क्या मैं किसी दावत में आया हूं ।' उम्मेदसिंह झटके से उठ खड़ा हुआ और रघुवा के हाथ से गेहूं का थैला ले अन्दर चला गया ।[1]

'हिमदंश' कहानी भी पहाड़ी समाज को, जो कि जर्जर होने के कगार पर है, चित्रित करती है । कहानी शहर चले गए पहाड़ी समुदाय तथा पहाड़ में ही बसे पहाड़ी समाज के मध्य उपजे सांस्कृतिक अलगाव को व्यक्त करती है । पहाड़ी मकानों का चित्रण इस कहानी में हुआ है -'पथरीली छतों वाले दुमंजिले मकानों की सफेद पुती दीवारें, सूरज की पहली किरणों के साथ बहुत खूबसूरत लग रही हैं ।'[2]

घर आए अतिथि को विदा करने का चित्रण इस प्रकार मिलता है --

'काकी का चेहरा बीच की दूरी तय करता मेरी आंखों के आगे आ जाता है । उदास चेहरा । उलझी हुई लटें । असमय आया बुढ़ापा और उस चेहरे पर नाक से माथे तक लगा पिठिया । अभी भी उनकी आंखें नम हैं । मैं पैर छूने झुका था । उन्होंने मुझे गले लगा लिया था,'... फिर आए चेला...' और काफी का गला रुंध गया ।'[3]

इस के साथ ही यह कहानी पहाड़ी संस्कृति के अन्य पक्षों को सामने लाती है । बीमार होने पर किसी जानकार व्यक्ति द्वारा भभूत (राख) मन्तरना (मंत्रित) तथा उस भभूत का बीमार व्यक्ति के माथे पर टीका लगाना, पहाड़ी समाज की एक प्रमुख विशेषता है ।

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ० 15
2. वही, पृ० 47
3. वही, पृ० 47

लेखक ने पहाड़ी संस्कृति में व्याप्त इस अंधविश्वास पर चोट की है । पहाड़ में पानी की समस्या विकराल रूप से है । पानी के लिए जगह-जगह नौले (बावड़ी) होते हैं, लेकिन अब वह भी सूखते जा रहे हैं । लेखक ने एक नौले का वर्णन इस कहानी में किया है -

'नौले में पानी बिल्कुल सतह पर पहुंचा हुआ था । वह भी काफी गंदला । किसी प्रकार मैं पानी लेने झुका, अंजुल में पानी भरा और मुंह में छपाक से दे मारा । इतना ठंडा कि आधी थकान जाती रही, दो एक घूंट मैंने पिया भी, दांतों में रेत किरकिराने लगी ।'[1]

पहाड़ में श्रमजीवी वर्ग की संस्कृति को 'लाजवाब' कहानी सामने लाती है । बच्चीराम, लोहार के माध्यम से, यह कहानी पहाड़ी समाज के इस वर्ग की आशा-आकांक्षा को मूर्त करती है । यह पेशा वैसे ही कठिन है, लेकिन पहाड़ के अभावग्रस्त समाज में लोहारगिरी का यह खानदानी पेशा अधिक कठिन बन गया है । न अच्छी गुणवत्ता वाला लोहा वहां सुलभ है, न ईंधन । ईंधन के लिए चीड़ के पेड़ों की छाल, जिन्हें 'बक्कल' कहा जाता है, पर पूरी तरह निर्भर रहना पड़ता है । इस प्रकार की आदिम तकनीक के प्रयोग के कारण, यह पेशा अधिक श्रमप्रधान एवं कष्टसाध्य बन गया है ।

यही कारण है कि कार्य का बोझ, बच्चीराम के छोटे बेटे चनिया पर आ गया है -'अब चनिया क्या-क्या करेगा । न जाने जंगल से बक्कल लेकर कब लौटे, उस पर घन-हथौड़ी भी चलाता है और सुबह उठते हीस्कूल के लिए दौड़ा-दौड़ ।'[2] अन्ततः इसे पूरे अध्यवसाय में पढ़ाई की ही बलि देनी पड़ती है और चनिया का स्कूल छूट जाता है ।

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ0 56
2. वही, पृ0 94

लोहारगिरी के पेशे की कष्टसाध्यता, कहानी के इस उद्धरण से, मूर्त हो उठती है -

'बक्कलों से लोहा तपाना, मानो अपनी हड्डियां फूंक कर लोहा तपाना है । उत्साह में आकर उसने लोहा मंगा तो लिया, पर अब उसे कौन तपाएगा, कौन पीटेगा और कौन मोड़ेगा । है उसके शरीर में इतनी जान ?'[1]

बच्चीराम, अपने बेटे चनिया को भी ऊंची आशाओं के साथ स्कूल भेजता है । चनिया की दिनचर्या, स्कूली बच्चों की दिनचर्या को जीवंत रूप से सामने लाती है -

'तड़के वह उठता । पाटी को पोतता और कमेट के डिब्बे में थोड़ा पानी मिलाता, वाज्यू से कलम बनवाता, दो बासी रोटी, गुड़ की 'कटुक' और बिना दूध की काली चाय में भिगो कर खाता और घुटनों व चूतड़ पर टल्ली लगी पेंट संभालता, अन्य लड़कों के साथ चल देता । स्कूल वैसे अच्छा नहीं लगता था उसे, अक्सर पंडित जी चिड़िचिड़ाए रहते और बिना कारण ही किसी भी लड़के को पीट देते थे । पंडित जी को पांच कक्षाएं एक साथ ही देखनी होती थीं और वह आते थे पांच मील दूर के गांव से । नतीजा यह होता कि अक्सर ही वह अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे ही ऊंघने लगते या स्कूल ही नहीं आते । जिस दिन पंडित जी नहीं आते, लड़कों के मजे आ जाते, वह कभी रास्ते में हिसालू और किल्मोड़े खाते और कभी गधेरे में हथवी लगा छोटी छोटी मछलियां मारते, जिन्हें वह आग में भून कर तुरत-फुरत खा जाते ।'[2]

पहाड़ का जनजीवन, सामान्यत: स्थिर सा रहता है । छोटी सी घटना भी, वहां के लिए एक बड़ी घटना है । पहाड़ के शान्त जीवन में मुख्यमंत्री का आगमन एक बड़ी घटना है । उनका भव्य स्वागत किया जाता

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ० 95
2. वही, पृ० 98

है । उनके स्वागत का दृश्य पहाड़ी समाज की उत्सवधर्मिता को प्रकट करता है । वस्तुत: यह घटना एक 'कौतिक' (मेले) के समान महत्वपूर्ण बन जाती है -

'उसके क्या आसपास के सभी गांवों के लोग, मुख्यमंत्री जी का भाषण सुनने पहुंचे थे । लगता था मानो सोमनाथ का कौतिक हो रहा हो । कुछ गांव नंगारा-निशाण लेकर आ रहे थे तो कुछ झोड़े लगाते गाते-बजाते । रामगंगा की घाटी नंगारों की धमाधम और नरसिंह की तू - तू - तू से गूंज रही थी । बालक बच्चीराम इतना बड़ा जनसमूह पहली बार देख रहा था । इलाके के सबसे बड़े कौतिक में भी इतने लोग नहीं आते । ऐसा कहते उसने लोगों को कई बार सुना ।'[1]

यद्यपि एक ओर जनता में अपने मुख्यमंत्री के स्वागत के प्रति यह बेसब्री है तो दूसरी ओर मुख्यमंत्री , आम राजनैतिक नेता की भांति, राजसी ठाट-बाट एवं वैभव के साथ, घंटों देरी के साथ दर्शन देते हैं । यह परि-दृश्य वर्तमान राजनीतिक संस्कृति के एक महत्वपूर्ण पहलू को उजागर करता है ।

'घंटों पहले जनता को मैदान में बैठा दिया गया । लाउड स्पीकर देश-भक्ति के रिकार्ड सुना रहा था । बीच-बीच में, कोई छोटा-मोटा नेता खद्दर के कपड़े पहने गांधी टोपी लगाए कह उठता, 'भाइयो, माननीय मुख्यमंत्री जी बस पधारने ही वाले हैं । रास्ते में उन्हें कई जगह रुकना पड़ रहा है और चूंकि जनता के प्रेम को ठुकराना उनके लिए संभव नहीं है, इस लिए कुछ देर हो रही है । आप लोग शांतिपूर्वक बैठिए ।' आदि आदि । पर भूख, प्यास और धूप से बच्चों का तो क्या, बड़ों का भी बुरा हाल था । किसी तरह कुल मिला कर छह घंटा लेट मुख्यमंत्री जी की कार वहां

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ0 99

पहुंची । उनके आगे पुलिस, जिलाधीश और भी न जाने किस किस की गाड़ी थीं । पीछे भी कुछ गाड़ियां थीं, जिनमें जिले के आला अफसर, पार्टी के अन्य छोटे-बड़े नेतागण व इलाके के प्रमुख व्यक्ति लदे थे ।'[1]

'आखिरी पहर' पहाड़ी जीवन पर लिखी एक अलग तरह की कहानी है । इसमें ठंड, बरसात, अँधेरे और बाघ के बीच अपने भेड़-बकरियों के साथ फंसा असहाय चरवाहा है जिसके पास कुल पूंजी अपनी हिम्मत ही है, अरुण कुमार ने साक्षात्कार के एक अंक में इस कहानी पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि 'वातावरण का चित्रण ही इस कहानी की संवेदना के मूल में है ।'[2] यद्यपि यह ठीक है कि कहानी में वातावरण का मूर्त चित्रण हुआ है, तथापि इसकी मूल संवेदना को केवल वातावरण का चित्रण मानना भूल होगी । वस्तुत: इस कहानी की मूल संवेदना है - चरवाहा संस्कृति । पहाड़ी समाज में चरवाहों की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति है जो अपनी भेड़ बकरियों के साथ, चरागाहों की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान को आवागमन करते रहते हैं । एक ओर प्रकृति के साथ इनका गहरा तादात्म्य होता है तो दूसरी ओर प्रकृति के क्रूर रूप के साथ इनकी नग्न मुठभेड़ भी लगातार चलती रहती है । इस कारण इनके जीवन में जहां लगातार भय एवं आतंक का साम्राज्य रहता है, वहीं दूसरी ओर इनका मनोजगत साहस और संघर्ष की प्रतिमूर्ति बन जाता है ।

'जब वह 12-14 साल का था, तब पहली बार अपने पिता के साथ इधर आया था । वे लोग गर्मी की शुरुआत होने के बाद अपने-अपने सेड़ों को लेकर धीरे-धीरे चले थे । तब उनके पास सौ के करीब भेड़ें थीं और इतनी ही बकरियां । ददा उससे पहले बाबू के साथ आता था, उसी की हिरस में वह भी आने की जिद पकड़ बैठा था । उस बार वे लोग उधर

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ० 99
2. अरुण कुमार - बच्चे गवाह नहीं हो सकते ? (साक्षात्कार - अप्रैल-जून, 1987), पृ० 131

मर्तोली बुग्याल की तरफ गए थे । पर वह बीच में ही लौट गया था ।... वह पहला मौका था जब उसने इतना खराब मौसम देखा था । बुग्यालों के पास दोपहर बाद धूप दिखलाई नहीं देती थी । खाती के बाद पिंडर के साथ-साथ तभी पहली बार उसने कुछ विदेशी देखे थे । बंदर जैसे लाल । कोई बाल बढ़ाए, कोई दाड़ी । पैंट पहनने वाली औरतें भी पहले-पहल तभी देखी थीं । उसे अच्छा लगा था । वे लोग उसे देख कर मुस्कराते थे, कभी हाथ हिलाते थे । वह डर या झिझक के कारण हाथ भी नहीं उठा पाता था । पर वह सब उसे अच्छा लगा था ।'[1]

एक ओर चरवाहा, एकान्त में प्रकृति से जूझ रहा होता है तो दूसरी ओर उसे घर की चिन्ता भी सताती रहती है । आतंक के घनघोर क्षणों में उसे अपने प्रियतम की याद आती है । निराला की 'शक्तिपूजा' में राम की भांति ।

'उसने सोचा था वही निकल जाएगा इस बहाने । पर मौसम ने सारा कबाड़ा कर दिया था और राशन लेने जाने की नौबत ही नहीं आई थी । क्या पता, क्या हुआ होगा - बेटा या बेटी, कौन जाने ? गोपुली का चेहरा उसकी आंखों के आगे नाच उठा - आगे को तना पेट और पिछौड़े के पीछे छिपा चेहरा, उसकी आंखों में एक शरारती मुस्कराहट लगातार डोलती रहती थी । यह उसने कल्पना की थी क्योंकि आखिरी बार जब उसने गोपुली को देखा था तब सिर्फ हलके से चिन्ह थे । उसे ऐसा लग रहा था, मानो गोपुली को देखे एक युग बीत गया हो ।'[2]

चरवाहा संस्कृति, मनुष्य सभ्यता की आरंभिक अवस्था की याद दिलाती है । जहां जीवन की छोटी-छोटी आवश्यकताएं भी विराट बन जाती

---

1. पंकज बिष्ट - बच्चे गवाह नहीं हो सकते, पृ० 22
2. वही, पृ० 24

हैं तथा उनकी पूर्ति का ढंग भी आदिम अवस्था की याद दिलाता है ।

'अब उसे भूख महसूस होने लगी । शाम उसने इस डर से बहुत ही थोड़ा खाया था कि कहीं ऐसा न हो कि वर्षा के कारण वे खाना बना ही न सकें । उसने कंडी में दबा कर रखी रोटियों की पोटली निकाली और धीरे-धीरे खाने लगा । फाफंर की रोटी तक ठण्ड से पत्थर जैसी हो गई थी । भूख में उसकी यह भी इच्छा नहीं हुई कि गुड़ की डली ही होती, सब्जी की तो बात रही दूर । यहां तक कि उसे नमक तक याद नहीं आया, कहीं न कहीं जरूर मिल जाता । रोटी खा लेने के बाद उसे तम्बाकू की हुड़क लगी, अब उसमें इतना विश्वास आ चुका था कि वह अटक-बटक के लिए रखी बुकिल के इस्तेमाल की सोचने लगा । एक धूप निकली नहीं कि बुकिल की कोई समस्या नहीं रहेगी । वह जानता था । उसने अग्यिल पट्टी निकाली और बुकिल के कुछ रेशों को लोहे के टुकड़े के साथ जोड़ कर डांसी पत्थर के साथ रगड़ने लगा । अन्धेरे कूप में पत्थर और लोहे की रगड़ से निकल कर चिंगारियां इस तरह से फैलने लगीं, मानो प्रकाश के गोले छूट रहे हों । बुकिल संभवत: कुछ गीला होने के कारण आग नहीं पकड़ रहा था, पर जब बुकिल ने आग पकड़ी तो पल भर को ऐसा लगा कि एक हजार सूर्य एक साथ प्रकट हो गए हों ।'[1]

चरवाहा जिन्दगी का एक सच यह थी कि जीवन की रक्षा के लिए कभी-कभी दुर्दान्त पशु से निहत्थे ही जूझना पड़ता है । 'आखिरी पहर' कहानी, चरवाहा संस्कृति के इस पक्ष को जीवन्त रूप से हमारे सामने लाती है --

"इस उथल-पुथल से घबरा कर बाघ ने अपना शिकार छोड़ दिया और अनचाहे ही अपने सबसे बड़े प्रतिद्वंद्वी आदमी के रूबरू हो गया । बाघ की गुर्राहट और उसके नथुनों से उठती गंध इतनी तीव्र थी कि उसके लिए

---

1. पंकज बिष्ट - बच्चे गवाह नहीं हो सकते, पृ० 26

बाघ को और अधिक निकट रहने देना असंभव हो गया । उसके दिमाग में क्रोध लोहार के आंफर की तरह जलने लगा था । वह फिर उछला और इस बार उसका हांथ बाघ के गले में था ।'[1]

'कुंजरो बा...' कहानी पहाड़ी समाज के सांस्कृतिक जीवन का एक नया पहलू हमारे सामने रखती है । यह पक्ष है - साम्प्रदायिक संस्कृति का प्रसार । इस संस्कृति का प्रसार भी उपभोक्तावाद के प्रसार के साथ ही जुड़ा प्रतीत होता है । राजनीतिक स्वार्थों के लिए साम्प्रदायिक तनावों को हवा दी जाती है । कैसटों के प्रयोग से विष-वमन किया जाता है । इस का शिकार अंतत: एक अबोध बकरा बनता है - जिसे अख्तर ने अपने बेटे की तरह पाला है । यद्यपि सामान्य जनता के लिए मन्दिर का कार्य, अपने धर्म का कार्य है, लेकिन उसका इस्तेमाल आक्रामक राजनीति के लिए किया जाता है -

'अब फैसला कर ही लेना चाहिए कि यहां से कितने और कौन-कौन स्वयंसेवक शिलान्यास के लिए जायेंगे । हम ज्यादा से ज्यादा पांच-छह जन भेज सकते हैं । इन बाजारवालों से अंट-शंट काम के लिए जितना चाहे खर्च करवा लो, भगवान के नाम पर साले पैसे को दांत से दबाने लाते हैं । राम मन्दिर का कार्य पुण्य का ही कार्य नहीं है, हमारी संस्कृति और धर्म भी इससे जुड़ा है । पर कोई समझे तब न । हमारी कौम दिन-पर-दिन गड्ढे में क्यों जा रही है ? जैसे सब मरे हुए हैं । मुसलमानों को देखो । सिक्खों को देखो । अपने धर्म के लिए मर मिटने को तैयार रहते हैं । हम हैं कि हाथ से दमड़ी नहीं छूटती ।'[2] शिवदत्त का यह कथन, सामान्य हिंदू विश्वास को प्रकट करता है । जब उसकी इन्हीं भावनाओं को हवा दी जाती है तो वह उग्र रूप धारण कर लेती है जो कि अन्तत: साम्प्रदायिकता

---

1. पंकज बिष्ट - बच्चे गवाह नहीं हो सकते, पृ0 28
2. पंकज बिष्ट - टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां, पृ0 66

का रूप धारण कर लेती है ।

'मोहन राम(दास), आखिर क्या हुआ ?' कहानी दो संस्कृतियों की तुलना करती है । एक ओर है, पहाड़ की अभावग्रस्त जिन्दगी, तो दूसरी ओर है - महानगर की समृद्ध उपभोक्तावादी संस्कृति । पहाड़ के अभावग्रस्त जीवन से आया मोहन, महानगर के समृद्ध व्यापारी हरिंदर बवेजा के यहां नौकरी करता है । मोहन, वहां जिस संस्कृति से साक्षात्कार करता है, वह उसे किसी मायालोक से कम नहीं लगती । कहानी का निम्न उद्धरण, इस उपभोक्तावादी संस्कृति को स्पष्ट करता है -

'टीटू के हाथ में रंगबिरंगा जूते का डिब्बा था । कमरे में घुसते ही उसने डिब्बा खोला और सफेद झक पृष्ठभूमि पर हल्की गुलाबी पट्टियों वाला जूता निकाल कर पहनने लगा । ऐसा सुन्दर जूता । मोहन अवाक् था । जूता भी मुनाल जैसा रंगबिरंगा हो सकता है, यह उसकी कल्पना से परे था । अनंत सुराखों और द्रौपदी के चीर सरीखे फीतेवाले जूते को बांधने के बाद टीटू ने कहा, 'कैसा है ?'

'बहुत बढ़िया' । मोहन ने मुग्ध भाव से तारीफ की । उसकी आखें और चेहरा बता रहा था कि कैसी ललक जूते ने उसके अन्दर पैदा कर दी है ।

'कैसा कभी ऐसा जूता ?' टीटू ने झूमते हुए पूछा ।

'नहीं तो ।' मोहन ने सहज भाव से सर हिला दिया ।

'एडिडास का है । नाम सुना है ?'

'नहीं ' में मोहन का सिर देर तक सूखी पत्ती की तरह कांपता रहा ।

'कितने का है ?' मोहन ने सोचा, मौका लगा तो पहली तनख्वाह में अपने लिए भी ऐसा ही जूता खरीद लेगा ।

'वन थाउजेंड, नाइनटी फाइव रूपीज ओनली ।' टीटू ने हाथ नचाते हुए मुंह बना कर कहा ।

'क्या ?' मोहन की समझ में कुछ नहीं आया । एक तो पहले ही वह पहाड़ी गांव के स्कूल में पढ़ा हुआ था । अंग्रेजी भाषा अटपटी थी,

ऊपर से टीटू ऐसा आंकड़ा बोल गया था, जो उसके लिए यथार्थ ही नहीं था। इसलिए सब कुछ समझ के बाहर हो गया।'[1]

उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि पहाड़ी संस्कृति के विविध पक्षों को लेखक ने अपनी कहानियों में चित्रित किया है। साथ ही लेखक उन पक्षों को कहानी में, कहानी कला के प्रति पूरी तरह न्याय बरतते हुए मार्मिक ढंग से सामने लाने में सफल हुआ है।

महानगरीय पृष्ठभूमि की कहानियों में सांस्कृतिक चेतना

पंकज बिष्ट, समकालीन ऐसे रचनाकारों में हैं, जिन्होंने वर्तमान सांस्कृतिक परिदृश्य पर टिप्पणी करती हुई अनेक कहानियां लिखी हैं। अधुनातन सांस्कृतिक हमलों की उनकी पहचान बहुत बारीक है। 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते' की भूमिका में उन्होंने लिखा है -'... हम जैसे अविकसित और पिछड़े समाजों की समस्याएं और भी जटिल व कई मायनों में ज्यादा खतरनाक इसलिए हैं कि हम एक महाबली पूंजीवादी सभ्यता के प्रभाव क्षेत्र से मुक्त हो पाने की जगह और भी अधिक तेजी से उसकी गिरफ्त में कसते जा रहे हैं। ... शोषण के तरीके बहुत महीन हो चुके हैं। मनोविज्ञान एक हथियार है। अगर यह प्रभाव क्षेत्र पहले औपनिवेशिक शक्तियों के द्वारा बहुत ही क्रूड तरीकों से फैलाया जा रहा था, तो आज यह सांस्कृतिक लेन देन (कल्चरल एक्सचेंज), 'तकनालाजी ट्रांसफर' और 'मासमीडिया' के नये-नये करतबों के द्वारा फैल रहा है। यह सच है कि औपनिवेशिक दौर ने मानसिक गुलामी की जो आधारभूमि तैयार की थी, उसी पर आज इस सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का वट-वृक्ष फल-फूल रहा है।'[2]

---

1. पंकज बिष्ट - टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां, पृ0 133
2. वही - बच्चे गवाह नहीं हो सकते, पृ० 9

संस्कृति संबंधी सुस्पष्ट वैचारिक समझ के आधार पर ही पंकज बिष्ट ने अपनी कहानियों में विभिन्न सांस्कृतिक सवालों को उठाया है। वर्तमान राजनैतिक संस्कृति पर टिप्पणी करती हुई कहानियां हैं -`खोखल`, `कवायद` और `शबरी शर्मा बीमार हैं`। `खोखल` और `कवायद` कहानियां, प्रतीकात्मक ढंग से आपातकाल के दौरान की राजनैतिक संस्कृति और आतंक को सामने लाती हैं। एक स्वतन्त्र विचारों का व्यक्ति आपात-काल में लातार इस आशंका से ग्रस्त रहता है कि कभी भी उसकी हत्या कर दी जा सकती है।

`क्या पुलिस का विश्वास किया जा सकता है? या दिनेश को बता दूं? पर मेरी बात का विश्वास कौन करेगा कि एक साया-सा मेरा पीछा करता रहता है जो लम्बे-चौड़े कद का है, पर साफ नज़र नहीं आता? लोग कहेंगे मेरा दिमाग खराब हो गया है। कई दिनों से ऐसा हो रहा है। अचानक ही कोई चीज़ मेरे पीछे चलने लगती है। कई बार समान्तर चलती है और कई बार मुझ से कुछ कदम आगे। अकेले में, भीड़ और यहां तक कि दफ्तर में भी आ जाती है। नहीं। किसी से कुछ नहीं कहूंगा। कहना बेकार है। कोई इस बात को समझ नहीं सकता।`[1]

`वस्तुत: `खोखल` और `कवायद` कहानियां आपातकाल के दौरान स्वतन्त्रता का हनन किए जाने को प्रतीकात्मक रूप में चित्रित करती हैं। यद्यपि अमूर्त होने के कारण कहानी का प्रभाव कुछ कम जरूर हो जाता है। `शबरी शर्मा बीमार हैं` कहानी वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में नारी की स्थिति को उजागर करती है। आज की पुरुष प्रधान राजनीति में नारी की भूमिका, शबरी शर्मा के चरित्र से समझा जा सकता है। शबरी शर्मा, राजनीति में ऊपर तभी बढ़पाती है जबकि वह स्वयं अपना शोषण करवाने को तैयार होती है।

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ0 108

महानगरीय जीवन में स्त्री पुरुष के बीच सम्बन्धों में आए बदलाव को `प्रतिचक्र `, `बेल`, `होमवर्क `,`ऐसा तो नहीं होगा...` तथा `उस गोलार्द्ध में ...` आदि कहानियां रेखांकित करती हैं । ये कहानियां, नये जीवन मूल्यों, सौन्दर्य बोध और संवेदनाओं की कहानियां हैं । इन कहानियों मेंस्त्री का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है जिसके कारण स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों का परम्परागत धरातल बदल गया है । यद्यपि `होमवर्क` जैसी कहानियों में पति-पत्नी के मध्य अव्यक्त प्रेम को मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है तथापि अधिकांश कहानियों में पति-पत्नी के मध्य पैदा हुए तनाव को ही अभिव्यक्ति मिली है ।`उस गोलार्द्ध में ...` के पति पत्नी अपने अहम् के कारण अलग-अलग हो जाते हैं, लेकिन उनका बेटा, अभी भी उनके मध्य एक कड़ी के रूप में विद्यमान है ।

`मोहन जोदोड़ो ` तथा `क्या कहना है जटायु ` कहानियां वर्तमान साम्प्रदायिक माहौल पर लेखक की संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएं हैं । लेखक इन कहानियों के माध्यम से, उस मानसिक धरातल का पोस्टमार्टम करता है जहां साम्प्रदायिक विचार पनपते हैं । `क्या कहना है जटायु...` कहानी साम्प्रदायिक हिंसा से उत्पन्न भय और हिंसा को सामने लाती है ।

आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति पर पंकज ने `बच्चे गवाह नहीं हो सकते` जैसी उत्कृष्ट कहानी लिखी है । एक मध्यवर्गीय क्लर्क अपने पड़ोस में टी.वी. आ जाने से स्वयं उसे खरीदने के लिए अपना प्राविडेंट फंड का पैसा निकाल तथा वेतन की किस्तों में टी.वी. खरीद लेता है । इसी कारण वह स्वयं अपनी बीमारी का इलाज भी नहीं करता । अन्ततः एक दिन टी.वी. देखते देखते ही उसकी मृत्यु हो जाती है । कहानी समकालीन उपभोक्तावादी संस्कृति और उसकी मजबूत गिरफ्त को मार्मिक ढंग से जीवंत कर देती है ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पंकज बिष्ट की कहानियों में समकालीन यथार्थ के सांस्कृतिक पहलू का यथोचित चित्रण हुआ है ।

अध्याय - 5

पंकज बिष्ट की कहानियों का शिल्प

पंकज बिष्ट की कहानियों का शिल्प

1. कथा शिल्प

'शिल्प वस्तुत: अन्तर्वस्तु और अनुभूति का ही बहिरंग रूप है । प्रत्येक रचना अपने कथ्य और कृतिकार की अनुभूति के अनुरूप एक ढांचे को स्वीकार कर लेती है ।'[1]

आज कहानी को कला रूप में स्वीकृति मिल चुकी है । 'कहानी' अपने विकास के उस सोपान पर पहुंच चुकी है जहां कला की सारी मांगें और अपेक्षाएं उसकी भी मांगें और अपेक्षाएं बन चुकी हैं । प्रारम्भ में 'कहानी' को मात्र मनोरंजन का साधन माना जाता था, लेकिन आज मनोरंजन अथवा मनबहलाव 'कहानी' का लक्ष्य नहीं रह गया है । 'कहानी' आज 'कला' के रूप में भी पूर्णत: प्रतिष्ठित हो चुकी है ।

कहानी-कला के स्वरूप का सटीक निर्धारण कठिन काम है । 'संगीत और चित्रकला को 'शुद्ध' कला की संज्ञा दी गई है । इसकी तुलना में साहित्य-कला को मिश्रित (इम्प्योर) कला माना गया है ।'[2]

कहानी में पात्रों के (जिन्हें हम अनिवार्यत: अपने समान मानव प्राणियों के रूप में देखते हैं और उनके साथ खुद को तदात्मीकृत करते हैं) कार्यों और भावनाओं का प्रत्यक्ष अंकन होता है । इसमें नैतिक और भावनात्मक संकटों का, घटनाओं और स्थितियों का, जो हमारे अनुभव क्षेत्र की वस्तुएं हैं, चित्रण होता है । अत: कला रूप में कहानी की चर्चा करने पर इन समस्याओं पर विचार करना अनिवार्य है ।

---

1. गोविन्द चातक - प्रसाद के नाटक, पृ० 186
2. गोपाल राय - गोदान - नया परिप्रेक्ष्य, पृ० 197

रूपवादी आलोचक, कहानी को मात्र शिल्प अथवा भाषा में अपघटित करने पर बल देते हैं । उनकी धारणा है कि कहानी मात्र शब्द समूह है और विषय पर, उस रूप में बात करना, कहानी की कला पर बात न करके महज जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव पर बात करना है । उनके अनुसार, कहानी का कला रूप में विवेचन तभी सार्थक है, जब हम रूप (फार्म) और भाषा के माध्यम से उद्घाटित विषय पर बात करते हैं ।

रूपवादी आलोचकों का यह आग्रह, दुराग्रह ही कहलाएगा, क्योंकि विषय वस्तु की उपेक्षा करके कहानी की कला-चर्चा बेमानी होगी । कहानी की विषय-वस्तु ही, बहुत हद तक कहानी के शिल्प एवं भाषा को निर्धारित करने में सहायक होती है । `कहानी` शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत जीवन का चित्र है । जीवन क्या है, इसे हम जानते हैं । वह हमारे अनुभव की वस्तु है । अत: सर्वप्रथम कहानी, रूप और शब्दों की सहायता से, जो जीवन प्रस्तुत करती है, उसे अनुभव करना और फिर देखना कि वह कहां तकसच्चा, सजीव, सुस्पष्ट और विश्वसनीय जीवन के समान है,आवश्यक है । कहानी-कला की सार्थकता इसी में निहित है ।

उपन्यास के सम्बन्ध में गोपाल राय की निम्न टिप्पणी कहानी के बारे में भी पूर्णत: सटीक है -

`निश्चय ही हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि उपन्यास हमारे आसपास की जिंदगी का कोई टुकड़ा न होकर एक कला-वस्तु है । कला चयन और समिति (सिमेट्री) है । यह अपनी खुद की सख्त आरोपित रूपरेखा के भीतर सम्पूर्णता का भ्रम पैदा करती है । कला-वस्तु के रूप में कोई भी श्रेष्ठ उपन्यास रचनाकार द्वारा अपने `विजन` केअनुरूप अनुभूत या देखे हुए जीवन की सामग्री का चयन है । उपन्यासकार अपने समस्त अनुभव जगत् को किसी एक ही कृति में उंडेल नहीं देता वरन् अपने `विज़न` केअनुरूप उसमें जो भी अनावश्यक या फालतू होता है, उसे छांट देता है और शेष को अपने उद्देश्य के अनुसार संश्लेषित, रूपान्तरित, अनुकूलित या विरूपित

करता है । जीवन उपन्यासकार के चारों ओर अपने अर्थहीन सम्बन्ध बाहुल्य में बिखरा फैला होता है और जैसा हेनरी जेम्स ने कहा है : `इन सम्बन्धों का कोई अन्त नहीं है और कलाकार की सबसे बड़ी समस्या अपनी निजी ज्यामिती के द्वारा एक ऐसी परिधि का निर्माण है, जिसके भीतर ये सम्बन्ध घटित होते हैं ।`[1]

यदि कोई रचनाकार किसी भी सार्थक रूप द्वारा विश्वसनीय कथा संसार रचने में सफल रहता है तथा पाठक के मानस में अपने विचारों को स्थानान्तरित करने में सफल होता है तो वह रचनाकार निश्चय ही एक सफल कलाकार है, चाहे उसने किसी भी शिल्प प्रविधि का प्रयोग किया हो । लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि कहानी में शिल्प और भाषा का महत्व गौण है। लेखक अपनी `दृष्टि` के अनुसार कोई भी शिल्पप्रविधि स्वीकार करने या अपनी आवश्यकतानुसार नया कथारूप गढ़ने के लिए स्वतन्त्र है, पर उसे पाठक या आलोचक को आश्वस्त करना ही होगा कि उसके `विजन` केलिए वही कथा रूप सर्वाधिक उपयुक्त है ।

पंकज बिष्ट के कहानी शिल्प पर टिप्पणी करते हुए अरुण कुमार ने लिखा है -

`पंकज बिष्ट का मिजाज एक शिल्प-सजग लेखक का नहीं है, फिर भी वे ऐसे फार्म की खोज करते दिखाई देते हैं जो जटिलतर होते यथार्थ को ज़्यादा सटीक और प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त कर सके ।`[2]

यदि पंकज की कहानियों की शिल्प प्रविधि पर विचार किया जाय तो कहना होगा कि उन्होंने मुख्यत: दो-तीन शिल्प-प्रविधियों का ही अपनी अधिकांश कहानियों में प्रयोग किया है । उनके पहले कहानी संग्रह में परम्परागत शिल्प-प्रयोग अर्थात् किस्सागोई अथवा वर्णनात्मक विधि का

---

1. गोपाल राय : गोदान - नया परिप्रेक्ष्य, पृ0 198
2. अरुण कुमार - बच्चे गवाह... (साक्षात्कार, अप्रैल - जून 1987, पृ0 132)

का ही प्रयोग हुआ है जिसमें आवश्यकतानुसार उन्होंने कुछ नवीन रूपों का भी मिश्रण किया है । उनके बाद के कहानी संग्रहों में शिल्प संबंधी कुछ नवीन प्रयोग मिलते हैं । अपने बाद के संग्रहों में उन्होंने जादुई-यथार्थ की अतिरंजनापूर्ण शैली और फेंटेसी शिल्प का अच्छा रचनात्मक उपयोग किया है ।

पंकज बिष्ट की अधिकांश कहानियां वर्णनात्मक शैली में लिखी गई हैं । इनमें लेखक की भूमिका वर्णनकर्ता अथवा किस्सागो की है । इस प्रकार के शिल्प को पर्सी लब्बाक ने `दृश्यात्मक` और `परिदृश्यात्मक` की संज्ञा दी है । इस प्रकार के शिल्प में लेखक कहानी की घटनाओं, पात्रों के मनोभावों तथा पात्रों के चरित्र का स्वयं वर्णन करता चलता है । वस्तुत: इस प्रकार के शिल्प में अवलोकन बिन्दु का महत्वपूर्ण स्थान है । कहानी में अवलोकन बिन्दु लगातार बदलता रहता है, जिसके कारण हमें किसी पात्र अथवा घटना के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोणों का ज्ञान होता है । `हल`, `कीचड़`, `समारोह`, `प्रतिचक्र`, `हिमदंश`, `फर्क `, `पंद्रह जमा पच्चीस` `लाजवाब`, `शबरी शर्मा बीमार हैं `, `आखिरी पहर`, `आवेदन करो`, `होम-वर्क `, `खेल`, `क्या कहना है जटायु`, `टुंड्रा प्रदेश` कहानियां इसी शिल्प में लिखी गई हैं । उनकी अन्य कहानियों में भी इस शिल्प प्रविधि का बीच-बीच में प्रयोग मिलता है ।

इस प्रकार की प्रविधि का आदर्श उदाहरण है -`हल` कहानी । `कहानी` का कथानक लेखक के वर्णन से आगे बढ़ता है, जैसे --

`उम्मेदसिंह खेतों को पार करता हुआ, जैसे ही गांव में प्रविष्ट हुआ, उसकी नज़र सीधे भागुली के मकान पर पड़ी । स्थिति की गंभीरता के आभास मात्र ने ही उसे उद्वेलित कर दिया । पट्टांगण के भिड़े पर बैठे लोगों में एक हल्की सी हलचल हुई । कोई उठकर उसके नजदीक आया और कुछ कहता हुआ, जो उम्मेदसिंह की समझ में बिलकुल नहीं आया, सीधे सीढ़ियों से `मलखन` में ले गया ।`[1]

---

1. पंकज बिष्ट - पंद्रह जमा पच्चीस, पृ० 9

कहानी के परिवेश और पात्रों के बारे में जानकारी देने के लिए लेखक किसी पात्र का सहारा लेता है । उसके मनोभावों द्वारा पाठक को कहानी केदेशकाल और विभिन्न चरित्रों के सम्बन्ध में यथेष्ट जानकारी प्राप्त होती है । जैसे `हल` कहानी में उम्मेदसिंह के द्वारा हमें पहाड़ी परिस्थितियों और अभाव के बारे में जानकारी प्राप्त हो जाती है, साथ ही कथानक की गति आगे बढ़ जाती है - `फौरन सब समझ गया उम्मेद सिंह । बच्चा ही तो है बेचारा । इसने अंधेरे में ही उठा दिया होगा । ऊंघता जा रहा होगा, कहीं गिर गया । उसे भागुली पर अचानक गुस्सा आ गया । कैसी निर्दयी है यह औरत । मां है या दुश्मन । अरे, न बाहे जाते दो खेत तो कौन सा प्रलय हो जाता । वैसे ही साली ज़मीन कौन सा सोना उगल रही है । साले चौदह साल के बच्चे को ऐसे दौड़ाते हैं, जैसे कोई अपने बैल को भी नहीं दौड़ाएगा । ...

... वह अभी सोच ही रहा था कि उसका ध्यान डाक्टर की ओर गया, और विचार शृंखला वहीं ठहर गई ।`[1]

बीच-बीच में, कथानक प्रवाह के लिए, छोटे-छोटे संवादों का सहारा भी लेखक ने लिया है --

` कहां जा रहा है तू ?` उम्मेदसिंह ने पूछा ।

`घट पिसाने । अभी आता हूं ।`

`घट ? इस समय । बीड़ी तो लानी है, पर तू लौटेगा कब ।` दो मील जाना और आना, फिर पहाड़ी पनचक्कियां जो घंटे भर में पांच किलो अनाज न पीसें ।

`अरे नहीं, इस समय नहीं जाना है घट वट । आज की रोटी हो जाएगी या नहीं ? नहीं तो किसी से ले ले, कल सुबह चले जाना ।`

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ० 10

`है तो पर... ।` वह कुछ रुका ।

`पर क्या ?`

`कुछ नहीं मंडुवा है । इजा का कहना है कि... ।`

`नहीं, नहीं, ठीक है । मंडुवा है तो क्या हुआ ? क्या मैं किसी दावत में आया हूं ।`[1]

`कीचड़` ,`शबरी शर्मा बीमार है` तथा `लाजवाब` आदि कहानियों में भी इसी शिल्प का प्रयोग किया गया है । चूंकि`लाजवाब` कहानी एक लम्बे समय - अन्तराल को समेटती है, अत: इस लम्बे कालान्तर को भरने के लिए `पूर्व दीप्ति` शैली का प्रयोग भी इस कहानी में हुआ है । कहानी का वर्तमान घटनाचक्र, बच्चीराम का बुढ़ापे से जुड़ा है, लेकिन अपनी ज़िन्दगी का मूल्यांकन करते हुए वह अपने बचपन की घटनाएं याद करता है । ये घटनाएं कहानी में पूर्व दीप्ति (फ्लेश बैक) के रूप में आई हैं । `शबरी शर्मा बीमार हैं ।` कहानी में भी कथानक वर्तमान और अतीत में डोलता रहता है ।

`दृश्यात्मक` और `परिदृश्यात्मक` प्रविधि की कहानियों में ही लेखक ने कुछ शिल्प संबंधी नवीन प्रयोग किए हैं । इस प्रकार की कहानियों में लेखक की भूमिका मात्र वर्णनिकर्ता की नहीं है । वह अब इन कहानियों में एक प्रमुख पात्र के रूप में भी पाठकों के सामने आता है । इस प्रकार इन कहानियों में लेखक की भूमिका तटस्थ नहीं है, वरन् वह किसी पात्र विशेष के दृष्टिकोण से कहानी का वर्णन करता है । फलस्वरूप पूरी कहानी के प्रति हमारा अवलोकन बिन्दु भी बदल जाता है ।

`हिमदंश` कहानी का मुख्य पात्र, शहर से गांव लौटा नवयुवक है । वही अपने दृष्टिकोण से `कहानी` का बयान करता है ।

इसी प्रकार `समारोह`, `कीचड़`, `फर्क `,`पन्द्रह जमा पच्चीस`

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ0 15

`मोहेनजोदाड़ो` आदि कहानियों का मुख्य पात्र ही कथावाचक भी है । पाठक कहानी में घट रही घटनाओं, विभिन्न चरित्रों के सम्बन्ध में अपनी राय, इसी पात्र के माध्यम से बनाता है ।

इस प्रकार `मैं ` शैली में लिखी गई कहानी अपने प्रभाव में अधिक प्रभावी तथा व्यंजक होती है । देवीशंकर अवस्थी ने महेन्द्र भल्ला की एक कहानी पर टिप्पणी करते हुए, इस प्रकार की कहानी की अर्थवत्ता पर ठीक ही लिखा है -

`कहानी उत्तम पुरुष के दृष्टिकोण से कही गई है । मैं समझता हूं कि लेखक जिस समीपी, घनिष्ठ एवं तात्कालिक जीवन को उठाते हुए जिस आन्तरिक क्षुब्धता या वेदना को कहना चाहता है, उसके लिए उत्तम पुरुष के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं है । कहानी की अपनी प्रति में मैंने `मैं ` के स्थान पर `वह` करके पढ़ना चाहा तो कहानी की अर्थवत्ता ही खंडित नहीं हुई, उसमें एक प्रकार की अविश्वसनीयता भी आने लगी । `मैं ` शैली में लिखने के कारण लेखक को विश्वसनीयता लाने के लिए वे तमाम जीवनचरितात्मक `अभिज्ञान` नहीं लाने पड़े, जिन के बिना कि `वह` के माध्यम से विश्वसनीयता का आना कठिन था । वस्तुत:`वह` के द्वारा सम्बन्ध और काल की जो दूरी स्थापित हो जाती है, लेखक के लिए अभीष्ट नहीं है । पर इसके साथ ही जिस यथार्थ को वह वाणी देना चाहता है, उसके लिए संयत तटस्थता की भरपूर आवश्यकता है । इसके बिना सारा चित्रण आत्मरतिपरक और पूर्वाग्रहग्रस्त हो जाएगा ।`[1]

कहना न होगा कि पंकज की `मैं ` शैली की कहानियों में यह तटस्थता पर्याप्त मात्रा में है ।

---

1. देवीशंकर अवस्थी - नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति, पृ० 206

पंकज बिष्ट ने अपनी कुछ कहानियों में प्रतीक धर्मी शिल्प को अपनाया है । इन कहानियों का शिल्प, सामान्य कहानियों के शिल्प से अलग है । जहां उनकी वर्णनात्मक कहानियों में एक सुगठित कथानक मिलता है, वहीं इन प्रतीकात्मक कहानियों में एक सुस्पष्ट `कथानक` का अभाव मिलता है । ये कहानियां एक विशिष्टप्रकार के माहौल की सृष्टि करती हैं, जिसमें वातावरण का महत्व कथानक से अधिक है । चूंकि कभी-कभी प्रतीक स्पष्ट न होने के कारण ये कहानियां अमूर्तन के निकट भी पहुंच जाती हैं जहां पाठक को अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति होने में कठिनाई आती है। वहां ये कहानियां शिल्प संबंधी जटिलता का शिकार हो जाती हैं ।

`खोखल` और `क्वायद` इस प्रकार की कहानियां हैं । `खोखल` आपातकाल के आतंक को प्रतीकात्मक ढंग से सामने लाती है । आपातकाल के दमघोटूं और स्वतन्त्रता विरोधी वातावरण का चित्रण ही लेखक का अभीष्ट है ।

`रात को अक्सर बड़ा अजीब हादसा होता है । दूर से एक भारी गाड़ी घरघराती हुई आती है जिसकी तेज हेडलाइट्स मीलों दूर से ही मेरी खिड़की के कांच से टकराकर कमरे में एक डरावने सुर्ख रंग की होकर फैल जाती है । कमरे का वातावरण ऐंद्रजालिक हो जाता है, मानो कोई प्रेत लीला चल रही हो । गाड़ी अन्ततःठीक मेरे ही सामने आ कर रुकती है जिसका इंजन बड़ी बेहूदी और सांफ़नाक आवाज़ करता है । उसमें से कोई छपाक से कूदता है और बिना रुके बड़े अजीब और भारी कदमों से धड़ाधड़ सीढ़ियां चढ़ने लगता है । मैं दम साधे सुनता रहता हूं । पदचाप धीरे-धीरे बढ़ती जाती है और ठीक मेरे दरवाजे पर आकर सड़क की आवाज करती हुई, मानो अनजाने कांच की प्लेट पर पांव पड़ गया हो, रुकती है । फिर कोई भारी आवाज़ में मेरा नाम लेकर पूछता है, `क्या वह यहीं रहते हैं ?`[1]

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ0 109

`कवायद` कहानी भी तानाशाही शासन की वस्तुस्थिति प्रकट करती है । लेकिन इन कहानियों के सम्बन्ध में स्वयं लेखक का मानना है कि ये अमूर्तन के निकट पहुंचने के कारण अप्रभावी हो गई है ।

पंकज बिष्ट की कहानियों में एक तीसरे प्रकार का शिल्प भी दृष्टिगोचर होता है । इस शिल्प में जादुई यथार्थवाद का सहारा लिया गया है । `खिड़की` कहानी इसी प्रकार की शिल्पविधि में लिखी गई है । इस कहानी की समीक्षा करते हुए अरुण कुमार ने लिखा है - ` `खिड़की` में बिष्ट ने यथार्थ को चित्रित करने के लिए अतिरंजना की जादुई शैली का प्रयोग किया है । क्रांतिकारी कवि की रचनाएं आग उगलती हैं । उसकी पिछली पाण्डुलिपि जब कम्पोज़ हो रही थी तो रचना की गरमी से प्रेस के सारे टाइप पिघल गए थे । चिंतित सत्ता प्रतिष्ठान ने मुफ्तलिसी में जी रहे कवि को पूरी विनम्रता के साथ फेलोशिप पेश की । अब सत्ता की सुविधाओं में गिरफ्त कवि अपने सुसज्जित आवास से जो भी नम्बर डायल करता है, वह उसकी देखभाल के लिए नियुक्त एक अधिकारी का होता है । वह सीझता हुआ अपने कमरे की खिड़की खोलना चाहता है तो बेरा अदब से बताता है कि खिड़की खोलने से एयरकंडीशनर काम नहीं करेगा । रचना की सफलता यह है कि अतिरंजना ने यथार्थ को बहुत विश्वसनीय रूप से प्रकट किया है, जबकि काशीनाथ सिंह की इसी शैली में लिखी कहानियां `सदी का सबसे बड़ा आदमी`, `बायस्कोप का लल्ला` थोड़ी सी असावधानी और जल्दबाजी के कारण सिर्फ कौतुक कथा का रूप और स्वाद ले कर रह गई हैं ।`[1]

इसी प्रकार के शिल्प में लिखी गई कहानियां, `आवेदन करो ` बेरोजगारी को तथा `मोहनजोदड़ो ` परमाणु-युद्ध की विभीषिका को आधार बना कर लिखी गई हैं ।

---

1. अरुण कुमार - बच्चे गवाह नहीं हो सकते, पृ० 131
(साक्षात्कार - अप्रैल-जून 87)

एक अन्य शिल्प, जिसका प्रयोग पंकज ने अपने बाद के कहानी-संग्रहों - `बच्चे गवाह नहीं हो सकते` और `टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां ` - में किया है, वह है-परिदृश्यात्मक | विवरणात्मक शैली और फंतासी शैली का मिश्रित प्रयोग । `बच्चे गवाह नहीं हो सकते`, `दुर्गंध ` तथा `मोहनराम (दास), आखिर क्या हुआ ?` आदि कहानियों में इसी मिश्रित शिल्प का प्रयोग किया है । इस प्रकार की कहानियों में प्रारम्भ में एक सुस्पष्ट कथानक होता है, लेकिन अंत तक आते-आते कहानी एक फंतासी में बदल जाती है । एक दुःस्वप्न, सभी चरित्रों को उल्टा-पुल्टा कर देता है । इस प्रकार का स्वप्न, इस प्रकार के शिल्प में लिखी गई कहानियों की विशेषता है । इस प्रकार स्वप्न में यथार्थ का विरूपीकरण, आज के बाह्य यथार्थ के भीतर के जटिल यथार्थ को सामने लाता है ।

`दुर्गन्ध` कहानी का डाक्टर इसी प्रकार के स्वप्न से साक्षात्कार करता है -`संभवत: डाक्टर को नींद भी आ गई थी । जैसे कोई स्वप्न था, खौफनाक । एक लम्बा अंतहीन वार्ड का, धुला पुंछा, सफेद झक चादरों से सजे बिस्तरों वाला, जिसके एक सिरे पर डाक्टर खड़ा था और दूर कहीं सफेद चादर में लिपटी एक लाश थी, शेष कहीं कुछ नहीं था - एक रोने की आवाज के सिवा, जो कभी बिलकुल नज़दीक और कभी बहुत दूर से आ रही थी । वह हड़बड़ाया, दृश्य तो स्वप्न ही था, पर आवाज़ यथार्थ से स्वप्न में आ रही थी ।`[1]

इसी प्रकार `मोहनराम (दास), आखिर क्या हुआ ?` कहानी में भी दुर्घटना सपने में ही होती है --

---

1. पंकज बिष्ट - टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां, पृ0 19

'तब पहली बात सपने पर ही होनी चाहिए ।

वैसे भी कोई कह ही कैसे सकता है कि सपने में दुर्घटनाएं नहीं होतीं । सपना एक सच्चाई है तो दुर्घटना उससे जुड़ी दूसरी सच्चाई । फिर भी सपने को ही नकार दें तो बात और है । मानते हैं तो फिर घातक भी होंगी । आखिर यों ही तो नहीं कहा गया है कि सावधानी दुर्घटना घटी । यानी ऐसे सपने देखे ही नहीं जाने चाहिएं, जो किसी भी तरह की दुर्घटना की ओर ले जा सकते हैं । विशेषकर उन सपनों से तो बचना ही होगा, जो घातक होने की संभावना मात्र का आभास भी देते हों ।'[1]

'बच्चे गवाह नहीं हो सकते' कहानी में भी फंतासी का प्रयोग, यथार्थ की जटिलता से पाठक का साक्षात्कार कराने में सफल रहा है । कहानी का सीधा-साधा कथानक, अंत तक पहुंचते-पहुंचते फंतासी में बदल जाता है -

'ओ.. ओ... ओ... आक । की भयंकर कराह भी रघुवा ने ही सुनी थी । नहीं, यह टेलीविजन से नहीं आई थी । पर्दे पर उस समय तक एक नया ही सुशुमा विज्ञापन चलने लगा था - जिन्दगी को और भी सुन्दर बनाने का, पर पर्दे से बाहर जो हो रहा था, वह अविश्वसनीय था। रघुवा देख रहा था, किसी फिल्म के स्लो मोशन शाट की तरह अपनी पूरी विकरालता और बारीकी में उसके पापा बिशनदत्त अपनी छाती दबाए हुए सेमल के फूल के रूओं से हवा में थोड़ा उछले थे और उसके बाद धप्प से फर्श पर औंधे मुंह जा पड़े थे । ... यह कैसे हो सकता है ? उसकी समझ में नहीं आ रहा था । लेकिन...

हां, गोली चलते उसने देखी थी - अपनी आंखों से ।'[2]

---

1. पंकज बिष्ट - टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां, पृ0 126
2. पंकज बिष्ट - बच्चे गवाह नहीं हो सकते, पृ0 51

इस विवेचन से स्पष्ट है कि पंकज बिष्ट ने अपनी कहानियों में विभिन्न शिल्प-प्रविधियों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। विनोददास की यह टिप्पणी उचित ही है - "दरअसल पंकज बिष्ट की कहानियों की बुनावट सिर्फ बाहर की दुनिया का ही महाभारत नहीं दिखाती, बल्कि उसके कारण अंतर्मन के कुरुक्षेत्र में घायल आत्मा की पीड़ा को भी बेहद ईमानदारी से अंकित करती है। शायद यही कारण है कि उनकी कहानियों के पात्र कथाकार के दिमाग से गढ़े काल्पनिक चरित्र नहीं लगते हैं, बल्कि जीवन से उठाए हुए हाड़ मांस के ऐसे स्पंदित चरित्र लगते हैं, जो गायब होती मनुष्यता को सुरक्षित रखने के लिए अपना सर्वस्व दांव पर लगा देते हैं। शांत लेकिन विचलित कर देने वाली संवेदन भाषा में वे मानवीय अनुभूतियों के ठोस आशयों को व्यक्त करते हैं। इसीलिए हम उन की कहानियों में उनकी भाषा के सौन्दर्य या चमत्कार से नहीं, बल्कि उस की समझ और संवेदना की ताज़गी से मुग्ध होते हैं।"[1]

2. भाषा

किसी भी रचना में, जहां तक भाषा का प्रश्न है, उसकी भी सार्थकता इस बात में निहित है कि वह कहां तक लेखक के काल्पनिक संसार को विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत करने में तथा पात्रों के माध्यम से लेखक की अनुभूतियों और विचारों को पाठकों की चेतना में जागृत करने में समर्थ है। वस्तुत: कहानी के पात्र ही लेखक की अनुभूतियों, विचारों और अनुभवों के वाहक होते हैं और भाषा की शक्ति इस बात में निहित होती है कि वह कथा के पात्रों को सजीव रूप में प्रस्तुत करने के साथ साथ उन्हें लेखकीय विज़न का सफल माध्यम बना सके।

---

1. विनोद दास - परिवर्तन का घोष (इंडिया टुडे - 30 सितम्बर, 1996, पृ० 87)

पंकज बिष्ट के रचना-संसार का आयाम विविध है । इस जीवन को प्रस्तुत करने के लिए पंकज विविध अवलोकन बिन्दुओं का प्रयोग करते हैं और उसके अनुरूप भाषा का भी चुनाव करते हैं । कहानी के पात्रों का परिचय देने, उनका व्यक्तित्व गढ़ने, उनके परिवेश का चित्र उपस्थित करने तथा उनकी कहानी कहने के लिए वे लेखक के रूप में स्वयं सामने आते हैं । उनके पात्र स्वयं भी सोचते, अनुभव करते और आपस में या खुद से बातें करते हैं । इन सब के लिए विविध भाषा-स्तरों की आवश्यकता पड़ती है और पंकज की कहानियों में भाषा के ये विविध स्तर दृष्टिगोचर होते हैं ।

सर्वप्रथम उनकी पहाड़ी पृष्ठभूमि की कहानियों की भाषा का विवेचन करना उचित होगा । चूंकि पंकज यथार्थवादी रचनाकार हैं, अत: पहाड़ी जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करना उनका लक्ष्य है ।

पहाड़ में आम बोलचाल की भाषा कुमाऊंनी भाषा है, यद्यपि खड़ी बोली सभ्य समाज की भाषा है । इसलिए यथार्थ की दृष्टि से यह उपयुक्त होता कि पंकज पहाड़ी पृष्ठभूमि के पात्रों से आपसी संवाद कुमाऊंनी भाषा में ही कराते । लेकिन कुछ छुटपुट अपवादों के सिवा उनके सभी पात्र शुद्ध खड़ी बोली बोलते हैं । यह कहानी के सम्प्रेषण के लिए आवश्यक शर्त है, क्योंकि व्यापक हिन्दी पाठक समुदाय, कुमाऊंनी संवादों का अर्थ ग्रहण मुश्किल से कर पाएगा । यहां पंकज ने प्रेमचन्द के उदाहरण को आदर्श के रूप में लिया है । प्रेमचन्द के पात्र भी, चाहे किसी सामाजिक पृष्ठभूमि के हों, एक ही भाषा - खड़ी बोली का प्रयोग करते हैं । यद्यपि प्रेमचन्द की भाषा की विशेषता यह है कि अलग अलग पात्रों की खड़ी बोली, पात्र की सामाजिक आर्थिक स्थिति के अनुरूप अपना रूप बदल लेती है । पंकज के यहां भाषा का यह रूप परिवर्तन सामान्यत: दृष्टिगोचर नहीं होता ।

'हल' कहानी के निम्न परिच्छेद से यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक की वर्णन की भाषा और पात्र (पहाड़ी पृष्ठभूमि का) की भाषा

में कोई मौलिक अन्तर नहीं है -

`क्यों भागुली कैसी है ?` उम्मेदसिंह ने तनाव को नियंत्रित कर दरवाज़े से ही पूछा और थैली को वहीं किनारे पर रख दिया ।

`ठीक हूं, ददा` कहते हुए भागुली बैठने का उपक्रम करने लगी और उम्मेदसिंह के मना करते करते भी बैठ ही गई ।

रघुवा पास ही आ खड़ा हुआ था, अपनी मां के निर्णय की प्रतीक्षा करता । भागुली बाहर की सारी बातचीत सुन चुकी थी ।`जाने दो ददा । आ जाएगा कि डूबने तक ।`

`अरे तू भी क्या बात करती है, क्या मैं मंडुवा नहीं खा सकता । फिर आज भर की तो बात है, भेजना ही होगा तो कल भेज देंगे सुबह ।` वह भागुली को किसी तरह की ठेस भी नहीं पहुंचाना चाहता था ।`[1]

पंकज का भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण, रेणु के भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न है । रेणु, खड़ी बोली का भी एक अलग विशिष्ट प्रयोग करते हैं, जो उस भाषा को उस अंचल विशेष से जोड़ देता है और कहानी में स्थानीयता का पुट देता है । इसी प्रकार का एक विशिष्ट टोन, पहाड़ के कथाकारों, मनोहर श्याम जोशी, मृणाल पाण्डे की भी विशेषता है । यह विशिष्ट टोन भाषा की सृजनात्मक विशेषता होती है जो कहानी को स्थानीय रंगत देने में सर्वाधिक उपयुक्त होती है । लेकिन पंकज की भाषा में इस `विशिष्ट टोन` का अभाव पाया जाता है । यही कारण है कि उनकी कहानियां, यथार्थ का मात्र बाह्य पर्यवेक्षण प्रतीत होती हैं ।

यद्यपि पंकज के पात्र खड़ी बोली हिन्दी का ही प्रयोग करते हैं, लेकिन कहीं-कहीं, कुछ पात्र पहाड़ी (कुमाऊंनी) बोली का प्रयोग करते नज़र आते

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ० 16

हैं । `हिमदंश` कहानी में निम्न संवाद दर्शनीय हैं --

`ऐग्यो छै चेला, कैस छै चेला` (आ गया बेटा, कैसा है बेटा ?)

`सब ठीक छन` (सब ठीक हैं)

`द चेला तू भौते कमजोर है रो छे` (हाय, बेटा , तू तो बहुत कमजोर हो रहा है ।)

`ले चेला, चहा पी ले ` (ले बेटा, चाय पी ले ।)

लेकिन इस प्रकार के संवादों की संख्या अत्यल्प तथा संक्षिप्त ही है । ये संवाद भी कहानी के प्रवाह में चिप्पियों की भांति ही मालूम पड़ते हैं ।

जहां एक ओर पहाड़ी भाषा में संवादों तथा वाक्य विन्यासों की कमी है, वहीं पहाड़ी शब्दों का प्रयोग पंकज ने अपनी कहानियों में प्रचुरता से किया है । इन शब्दों के प्रयोग के कारण कहानी में स्थानीयता की झलक मिलती है । इन शब्दों का प्रयोग, सामान्यत: उन्हीं स्थानों पर किया गया है, जहां उनका सटीक पर्याय मिलना दुर्लभ था । इस प्रकार के शब्दों का अर्थ टिप्पणी में दे दिया गया है । इस प्रकार के शब्दों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं --

`हल` - `मलखन (ऊपर की मंजिल), बाने (जोतने/बाहने) `कड़माव` (वर्षा पर निर्भर खेती), `बज्जर` (वज्र) , बोकिया (मोटा-ताजा बकरा),इजा (मां), घट (पनचक्की) रौ (भंवर) ददा (बड़ा भाई), दाज्यू (बड़ा भाई), भुला (छोटा भाई या बहन)

`हिमदंश` - तल बसई (नीचे का मुहल्ला), चेला (बेटा), तहा (घाटी), बुबूजी (दादाजी), चहा (चाय), बाँज्यू (पिताजी), मलबसई (ऊपर का मुहल्ला) , बमण (ब्राह्मण), सीरज्यू (सुसुरजी), जेठ बाज्यू (ताऊजी), नौला (पानी की बावड़ी), लंगढ़ (भूखा रखना) ।

`लाजवाब` - बक्कल (चीड़ के पेड़ की छाल), जिमींदार (जमींदार), फौले (गागर), गूल (नहर), गन्धेरे (पहाड़ी नाला) कौतिक (मेलां), झोड़े (स्थानीय सामूहिक नृत्य), फितणा (प्रोपेलर) ।

यद्यपि पंकज की कहानियों में विशिष्ट पहाड़ी टोन का अभाव मिलता है, लेकिन मोहनराम (दास) आखिर क्या हुआ ? कहानी में उस विशिष्ट टोन की कुछ झलक दिखाई पड़ती है --

`वहां तो काम बहुत ठैरे । पानी लाना, डंगरों को जंगल ले जाना, घास काटना, लकड़ी लाना, कितने जो काम हुए । जो बच्चा रोना धोना ज्यादा करता है, उसको दो चट्टाक लगाने वाले हुए । अपने आप लाइन पर समझो ।`[1]

अपनी शेष कहानियों में, जो कि अधिकांशत: महानगरीय पृष्ठभूमि की हैं, पंकज ने खड़ी बोली का सृजनात्मक प्रयोग किया है । प्रारम्भिक कहानियों में पंकज का भाषा पर वह अधिकार नहीं दिखाई पड़ता, जो कि उनकी बाद की कहानियों में है । इन कहानियों में वर्णनात्मक भाषा और संवाद की भाषा में स्पष्ट अंतर देखा जा सकता है । किसी स्थान-विशेष का चित्र उतारने के लिए, पंकज ने जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह निश्चय ही प्रभावी है -

`जामा मस्जिद के दक्षिणी दरवाजे के ठीक सामने जाता है यह बाजार - मटिया महल । चौराहे की, जहां से यह गली फूटती है, बांई सड़क मछली बाजार होती हुई, एल्बर्ट पार्क और जनाना अस्पताल के बीचों-बीच निकल सुभाष मार्ग में जा मिलती है । वहां ट्रैफिक की लाल, पीली

---

1. पंकज बिष्ट - टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां, पृ० 128

और हरी बत्तियां जलती-बुझती रहती हैं । चौराहे, यानि इस बाजार के मुहाने पर भिश्ती पानी बेचते हैं । फूली मश्कें उठाए, चांदी के से कटोरे, जिन पर नक्काशी होती हैं, खनखनाते हैं । पानी `बरफ-बरफ` ऐसी ही अवाजें उठती हैं ।`[1]

किसी भीड़ भाड़ और चहल-पहल युक्त बाजार का बिम्ब निर्मित करने के लिए, उपर्युक्त भाषा की सामर्थ्य स्पष्ट है । इसी प्रकार के अनेक गतिशील बिम्बों की पंकज ने अपनी भाषा सामर्थ्य द्वारा रचना की है ।

पंकज की इन कहानियों के संवाद भी पात्रानुकूल हैं । संवाद पात्र की सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक स्थिति को पाठक के सामने स्पष्ट कर देते हैं । जैसे `पंद्रह जमा पच्चीस` के कम्पोजीटर परदुमन के संवाद, उसके पंजाबी भाषी और निम्न वर्गीय होने की स्पष्ट सूचना देते हैं --

`एक दिन मुझसे पूछ बैठा, `पंडत, तू इत्थे क्यों आन फंसिया । कहीं और जगह नहीं मिली ?`[2]

या

`इसी तरह एक दिन पूछ बैठा, `पंडत जी त्वाडी शादी हो गई ।`
`नहीं तो ।` मैं शायद शरमा गया था ।
`तो तुसी एक दिन मेरे नाल चलो । मैं तुम्हें दुनिया दिखलाऊंगा ।`[3]

इस प्रकार पंकज की भाषा वर्णनानुकूल और पात्रानुकूल है । पंकज ने आवश्यक्तानुसार अंग्रेजी, पंजाबी, पहाड़ी शब्दों का भी इन कहानियों में

---

1. पंकज बिष्ट - पन्द्रह जमा पच्चीस, पृ0 73
2. वही, पृ0 79
3. वही, पृ0 80

प्रयोग किया है । विशेषकर अंग्रेज़ी शब्दों का तो प्रचुर प्रयोग है । लेकिन उनके ये प्रयोग, कहानी में ऊपर से थोपे नहीं लगते, वरन् उनका प्रयोग स्वाभाविक ढंग से हुआ है । पंकज की भाषा में मुहावरों और कहावतों का प्रयोग विरल है ।

इसी के साथ जिन कहानियों में पंकज ने मानवीय संवेदनाओं की महीन अनुभूतियों का चित्रण किया है, वहां भाषा भी काव्यात्मक स्तर को प्राप्त हुई है । ऐसी जगहों पर भाषा की जीवंतता तथा अनुभूतिपरकता, पंकज की भाषा सामर्थ्य को प्रकट करती है । `टुंड्रा प्रदेश`, `दुर्गन्ध`, `उस गोलार्द्ध में ...`, `ऐसा तो नहीं होगा...` आदि कहानियों की भाषा, इसी प्रकार की सूक्ष्म अनुभूतियों और संवेदनों को जीवन्त करने वाली भाषा है ।

`टुंड्रा प्रदेश` कहानी का निम्न उद्धरण इसी प्रकार की भाषा का एक उदाहरण है --

`बड़े के स्वर की चिंता, हिला देने वाली थी । छोटा चुप खड़ा था । उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था । धीरे-धीरे उसका गला रुंधने लगा । अवश्यंभावी पूरी विकरालता के सामने खड़ी थी । उसका विरोध न जाने कहां खो गया था । वह रो तक नहीं पा रहा था । अपने रुदन की करुणा से वह किसी को भी हिला सकता था । वह उसका सबसे प्रभावी और अंतिम हथियार था । पर किसी अभिशप्त योद्धा की तरह वह ठीक समय पर उसका इस्तेमाल ही भूल गया था, जैसे चक्का, अचानक हल्की धप्प की आवाज करता, स्वयं ही उसके हाथों से छूट रथ के टूटे पहिए की तरह जमीन पर जा गिरा । वह पूरे वेग से चीत्कार करना चाहता था । वह झपट कर अपने पहिए को अपनी सुरक्षा के घेरे में ले लेना चाहता था, पर वह पंगु हो गया था । अशक्त और चेतनाहीन । स्तब्ध ।`[1]

---

1. पंकज बिष्ट - टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां, पृ० 55

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि पंकज बिष्ट की कहानियों में भाषा के विविध रूप प्राप्त होते हैं । विभिन्न भाव-स्थितियों और घटना-व्यापार को जीवन्त करने में उनकी भाषा पूरी तरह समर्थ है । साथ ही उनकी कुछ कहानियों में भाषा ने काव्यात्मक ऊंचाई भी प्राप्त की है ।

--

सारांश

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध -`पंकज बिष्ट की कहानियों का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन` को पांच भागों में विभाजित किया गया है । प्रथम अध्याय में `सामाजिक-सांस्कृतिक` अध्ययन के अर्थ पर विस्तार से चर्चा की गई है । सर्वप्रथम `साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की विशद विवेचना` है । साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन, साहित्य आलोचना की एक नव-विकसित प्रणाली है, यद्यपि इसकी कुछ विशेषताएं संस्कृत काव्यशास्त्र में भी खोजी जा सकती हैं । इस समाजशास्त्रीय अध्ययन में मुख्यत: तीन प्रकार की अध्ययन दृष्टि काम करती है -

(1) साहित्य में समाज की खोज
(2) समाज में साहित्य की सत्ता
(3) साहित्य और पाठक का संबंध

इसमें से प्रथम दृष्टि को साहित्य का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन माना जा सकता है । इस प्रकार के अध्ययन में साहित्य में चित्रित विभिन्न सामाजिक समस्याओं और सांस्कृतिक सवालों पर विचार किया जाता है । सामाजिक यथार्थ और लेखक की विचारधारा का विवेचन किया जाता है । साथ ही सामाजिक यथार्थ की प्रामाणिकता का भी विवेचन होता है । वस्तुत: साहित्य के सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन में उन प्रश्नों को प्रमुखता दे कर सतह पर उभार दिया जाता है, जो साहित्य के समग्र कला रूप के भीतर कहीं छिपे रहते हैं ।

दूसरे अध्याय में पंकज बिष्ट के रचना संसार का परिचय है । पंकज ने अब तक दो उपन्यासों और तीन कहानी संग्रहों की रचना की है :

उपन्यास - (1) लेकिन दरवाजा (1982)
(2) उस चिड़िया का नाम (1989)

कहानी संग्रह - (1) पन्द्रह जमा पच्चीस (1980)
(2) बच्चे गवाह नहीं हो सकते (1985)
(3) टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां (1995)

`लेकिन दरवाजा` दिल्ली के सांस्कृतिक संसार का दरवाजा खटखटाते एक ऐसे पहाड़ी व्यक्ति की कहानी है, जो इस दरवाजे को खोल कर उस संसार में प्रवेश तो पा लेता है, लेकिन उसके मूल्यों को पूरी तरह नहीं अपना पाता । यह उपन्यास दिल्ली के सांस्कृतिक जगत को पाठक के सामने लाता ही है, साथ ही वर्ग संक्रमण जैसी समस्याओं को उठाकर, वर्ग संक्रमण न कर पाने की विडम्बना को भी सामने लाता है ।

दूसरा उपन्यास `उस चिड़िया का नाम` एक अर्थ में `लेकिन दरवाजा` से उल्टी यात्रा है । यहां शहर में बस गया एक पहाड़ी व्यक्ति अपने पिता के निधन पर वापस पहाड़ की यात्रा करता है ।इस यात्रा में, उसे अपने विगत जीवन से नए ढंग से साक्षात्कार होता है । यह यात्रा वस्तुत: उसके अतीत की भी यात्रा बन जाती है । इस यात्रा में ही पाठक को पहाड़ी समाज और उसके विभिन्न पहलुओं से जीवंत साक्षात्कार का मौका प्राप्त होता है । मिथकों-प्रतीकों के प्रयोग से, लेखक ने उपन्यास में कई अर्थ स्तरों की रचना की है ।

पंकज बिष्ट के तीनों कहानी संग्रहों में कुल मिलाकर 29 कहानियां संकलित हैं । उनकी कहानियों को मुख्यत: दो भागों में बांटा जा सकता है -

(1) पहाड़ी पृष्ठभूमि की कहानियां ।
(2) महानगरीय पृष्ठभूमि की कहानियां ।

यद्यपि कुल मिलाकर पहाड़ी पृष्ठभूमि की सात-आठ कहानियां ही हैं, लेकिन इन सात-आठ कहानियों में ही पहाड़ी सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के विभिन्न पहलुओं को लेखक ने कुशलता से उजागर किया है ।

शहरी पृष्ठभूमि की कहानियां मुख्यत: मध्यवर्ग को केन्द्रित कर लिखी गई हैं । महानगरीय जीवन के जटिल यथार्थ को लेखक ने अपनी विशिष्ट शैली में चित्रित किया है । लेकिन यह तो मानना ही होगा कि इन कहानियों में चित्रित सामाजिक जीवन का आयाम सीमित है ।

शोध-प्रबन्ध का तीसरा अध्याय, कहानियों के सामाजिक अध्ययन पर केन्द्रित है । पहले पहाड़ी पृष्ठभूमि की कहानियों का अध्ययन किया गया है । तत्पश्चात् महानगरीय पृष्ठभूमि का सामाजिक अध्ययन किया गया है । पहाड़ी पृष्ठभूमि की कहानियों `हल`,`हिमदंश`,`लाजवाब`, `आखिरी पहर` ,`मोहन राम (दास) आखिर क्या हुआ` आदि - के आधार पर पहाड़ी जीवन के सामाजिक पक्ष का विवेचन किया गया है । इन कहानियों के माध्यम से, शहरों को पलायन, बालश्रम, नारी स्थिति, सामान्य सुविधाओं का अभाव, जैसी समस्याओं का लेखक ने मार्मिक चित्रण किया है । साथ ही आधुनिक विकास के परिणामस्वरूप पर्यावरण की क्षति, बढ़ती बेरोजगारी तथा साम्प्रदायिकता जैसी नई समस्याओं का भी लेखक ने कुशलता से चित्रण किया है ।

शहरी पृष्ठभूमि की कहानियों में शहरी मध्यवर्ग के जीवन में उत्पन्न नई समस्याओं को लेखक ने अपनी कहानियों का विषय बनाया है । स्त्री पुरुष संबंध, अमीरी-गरीबी की बढ़ती खाई, राजनीतिक आतंक, बदलते जीवन मूल्यों को लेखक ने अपनी कहानियों में स्थान दिया है ।

शोध प्रबन्ध के चौथे अध्याय में कहानियों का सांस्कृतिक अध्ययन, किया गया है । पहाड़ी सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पक्षों, रीति रिवाजों, मेले, उत्सव, तीर्थ आदि को लेखक ने अपनी कहानियों में व्यक्त किया है । लेकिन इन पक्षों का विशद चित्रण लेखक ने कम किया है । यदा-कदा कहानी की आवश्यकता को देखते हुए लेखक ने इस पहलू को छुआ भर है । फिर भी पहाड़ी जीवन को समग्रता में समझने के लिए ये कहानियां महत्वपूर्ण सांस्कृतिक जानकारी उपलब्ध कराती हैं ।

अन्त में, लेखक के भाषा शिल्प पर विचार किया गया है । लेखक ने विविध शिल्पों का प्रयोग किया है जिसमें मुख्य हैं - विवरणात्मक अथवा दृश्यात्मक-प्रदृश्यात्मक प्रविधि, प्रतीक शैली तथा फैंटेसी शिल्प प्रविधि । लेखक ने कहीं-कहीं इन विविध शिल्प शैलियों के मिश्रित रूप का भी प्रयोग किया है । भाषा की दृष्टि से लेखक ने शुद्ध खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग किया है । पहाड़ी शब्दों का प्रचुर प्रयोग है, लेकिन कई आंचलिक कथाकारों की भांति लेखक ने किसी विशिष्ट पहाड़ी टोन का प्रयोग नहीं किया है । महानगरीय पृष्ठभूमि की कहानियों में अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग मिलता है । कुछ कहानियों में भाषा के उच्च काव्यात्मक रूप की भी झलक मिलती है ।

-

सन्दर्भ सूची

(अ) आधार ग्रन्थ

1. पंकज बिष्ट — पन्द्रह जमा पच्चीस
तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली-2
1980

2. पंकज बिष्ट — बच्चे गवाह नहीं हो सकते
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली-2
1986

3. पंकज बिष्ट — टुंड्रा प्रदेश और अन्य कहानियां
किताब घर, नई दिल्ली-2
1995

(आ) सहायक ग्रन्थ

1. इन्द्रनाथ मदान — आज का हिन्दी उपन्यास
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,
1966

2. एस. आबिद हुसैन — भारत की राष्ट्रीय संस्कृति
एन.बी.टी., इंडिया, नई दिल्ली-16
1993

3. एस. पी. सुधेश — साहित्य के विविध आयाम
नालंदा प्रकाशन, नई दिल्ली-6
1970

4. गोपाल राय — गोदान : नया परिप्रेक्ष्य
अनुपम प्रकाशन, पटना,
1993

5. गोपाल राय — उपन्यास का शिल्प
बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना-3
1973

6. गोविन्द चातक — प्रसाद के नाटक, स्वरूप और संरचना
साहित्य भारती, कृष्णा नगर, दिल्ली-51
1975

7. चन्द्रशेखर कर्ण — आंचलिक हिन्दी कहानी
चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद-6

8. देवीशंकर अवस्थी (सं०) — नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
1973

9. नामवर सिंह — कहानी, नई कहानी
लोक भारती प्रकाशन, इलहाबाद, 1994

10. निर्मला जैन (सं०) — संकल्प समीक्षा दशक
हिन्दी अकादमी, दिल्ली, 1992

11. पंकज बिष्ट — लेकिन दरवाजा
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1982

12. पंकज बिष्ट — उस चिड़िया का नाम
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
1989

13. बद्री दत्त पाण्डे — कुमाऊं का इतिहास
अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा (उ.प्र.)
1990

14. महीप सिंह — समकालीन हिन्दी कहानी
विकल्प प्रकाशन, इलाहाबाद

15. मैनेजर पाण्डे — साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका
हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़
1989

16. शिवप्रसाद सिंह — आधुनिक परिवेश और नवलेखन
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

(इ) पत्र-पत्रिकाएं

1. हंस
2. आलोचना
3. साक्षात्कार
4. वर्तमान साहित्य
5. सारिका
6. कथादेश
7. वागर्थ
8. इंडिया टुडे